गधे की बात

(हास्य-व्यंग्य की विदेशी कृतियाँ)

केशवचन्द्र वर्मा

किताब महल, इलाहाबाद

प्रकाशक
किताब महल
५६ ए, ज़ीरो रोड
इलाहाबाद

वितरक
किताब महल (होल सेल डिविज़न) प्रा० लि०
रजिस्टर्ड आफिस : ५६ ए, ज़ीरो रोड, इलाहाबाद
कलकत्ता : बम्बई : दिल्ली : जयपुर : हैदराबाद : पटना

आवृत्ति : प्रथम १८८३ शकाब्द

मूल्य : तीन रुपए

आवरण परिकल्पना
भवानीशंकर सेनगुप्त

मुद्रक
पियरलेस प्रिन्टस,
नया बैरहना,
इलाहाबाद

आवरण मुद्रक
ईगल ऑफसेट प्रिन्टर्स,
१५, थार्नहिल रोड,
इलाहाबाद

• अनुक्रम

विज्ञापन

जटिलताओं और विषमताओं के फलस्वरूप उपजी कुरूपताओं पर मुलम्मा चढ़ाने की वृत्ति नए सामाजिक-मूल्यों की देन है। इन नए मूल्यों को पहिचानने में विदेशी दृष्टि ने बड़ा योगदान दिया है। इसीलिए साहित्य की अनेक विधाओं द्वारा आधुनिकता का नया परिप्रेक्ष्य प्रस्तुत करने में भी विदेशी साहित्य का अध्ययन महत्वपूर्ण दृष्टि देता रहा है। व्यंग्य और हास्य जीवन की कुरूपताओं के प्रति सहज भाव से मुखरित रहे हैं। विदेशी हास्य व्यंग्य में यह मुखरता और भी अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती रही है क्योंकि 'काम्प्लेक्सिटी' का 'भोग' उन्होंने हमसे पहिले भोगा है। अतः विदेशी हास्य व्यंग्य के प्रति आग्रह इस दृष्टि को अधिक सक्षम बना सकने में समर्थ होगा, ऐसा मेरा विश्वास है।

'हिन्दी में शिष्ट-हास्य रस का अभाव' का नारा लगाने वालों ने कभी अच्छे लोगों को उच्चस्तर के हास्य व्यंग्य अनूदित करने के लिए प्रेरित नहीं किया। जो चीजें अनूदित हुई वे या तो नगण्य रहीं या उनका स्तर नहीं उठ पाया। श्री जी० पी० श्रीवास्तव ने मोलियर की कुछ रचनाओं का अनुवाद किया था पर कार्य आगे नहीं बढ़ सका। वस्तुतः घटिया किस्म की मूलरचना करने की अपेक्षा (दूसरे दर्जे का ही सही!) अनुवाद करना श्रेष्ठतर है क्योंकि वह अपनी भाषा के पाठकों को रसानुभूति के नए स्तरों से परिचित कराता है और उनके भावबोध को विकसित करता है।

ये अनुवाद इसी दृष्टि से प्रस्तुत किये जा रहे हैं। बहुतेरे विदेशी लेखकों की कृतियाँ जिन्हें पढ़ने का अवसर मिला, जो अच्छी

लगीं और जिनका रसबोध भारतीय जनमानस के निकट दिखाई पड़ा उन्हें मैंने अनुवाद के लिए चुना है। कुछ अंशों के तो अनुवाद ज्यों के त्यों कर दिए गए हैं पर बहुत से ऐसे हैं जिनमें सुविधा की दृष्टि से इधर-उधर उलट-फेर करना पड़ा है। इसीलिए मैंने उन्हें 'आधारित रचना' या छायानुवाद कहा है। वे मूल रचनाओं का अक्षरशः अनुवाद न हो कर भी उनकी मूल प्रकृति और रसानुभूति से परे न हो जायँ, इसका ध्यान रक्खा गया है।

ये अनुवाद किसी योजना के अंतर्गत नहीं हुए हैं। इसीलिए इसमें कुछ अंग्रेजी के 'पीस' हैं, कुछ अमेरिकन, कुछ रूसी, कुछ तुर्की, और यूगोस्लाव भी हैं। जो जब अच्छा लगा और मन को रुचा वही अनुवाद कर डाला। ये समस्त अंश पत्र-पत्रिकाओं में पहले भी प्रकाशित होते रहे हैं। धर्मयुग, संगम, आज, भारत, प्रवाह और माया के पाठक इन रचनाओं से परिचित रहे हैं। उन सबको सँजो कर एक जगह पर कर दिया गया है। पुस्तक की रसमयता की वृद्धि के लिए कुछ विदेशी कार्टून भी साभार उद्धृत किये जा रहे हैं!

मेरा विश्वास है कि हिन्दी के रसवान पाठकों को इस संग्रह से नया स्वाद अवश्य मिलेगा। यदि हास्य लेखकों और आलोचकों को भी इससे कुछ प्राप्त हो गया तो उसे घाटे की कमाई समझूंगा!

प्रयाग
ग्रीष्म, १९६१

केशवचन्द्र वर्मा

शिक्षार्थी को

'अम्मा-दिवस'

इधर हम लोगों के बीच जितनी भी बातें, जितनी भी विचार-धाराएँ और वाद चले हैं, मैं समझता हूँ उन सब में बढ़िया रहा है 'अम्मा दिवस' मनाने का विचार! बात यह है कि यह बड़ा अजीब तो लगता ही होगा, लेकिन साथ ही साथ बड़ा मजेदार भी है। और आप देखेंगे कि यह विचार, कितनी जल्दी सारी दुनिया में फैल जायगा, क्योंकि इसमें फैलने की बड़ी शक्ति छिपी हुई है।

हम लोगों के बड़े परिवार में यह विचार बड़ा अच्छा जमा। लिहाजा हम लोगों ने तय किया कि एक विशेष उत्सव के साथ 'अम्मा दिवस' मनाया जाय! हम लोगों ने सोचा कि पिछले सालों में अम्मा ने हमारे लिए कितना त्याग और कितना परिश्रम किया था और आज भी करती रहती हैं। इसलिए उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करने और उन्हें गौरवान्वित करने के उद्देश्य से ही हम हमलोगों के मन में इस प्रकार का विचार उठा था।

बस हमने तय कर दिया कि हम इस दिन को बड़े त्यौहार की तरह मनाएँगे, घर भर को छुट्टी रहेगी और सब कुछ ऐसा करेंगे कि अम्मा को हर तरह से खुशी हो और आराम रहे। बाबूजी ने निश्चय कर लिया कि वह दफ्तर से एक दिन की छुट्टी ले लेंगे, ताकि उत्सव को खूब समारोह से मनाया जा सके और वह पूरी सहायता कर सकें। उसी तरह चिम्मी दीदी और मुन्नी कालेज नहीं गईं और मैं और रामू भी घर पर ही रह गए।

हमने यह सोच लिया था कि इस दिन को बिल्कुल वैसा ही मनाएँगे जैसे अपने यहाँ होली-दिवाली और ईद मनाते हैं। और इसीलिए सारे कमरों को तमाम बढ़िया-बढ़िया चीजों और गुलदस्तों से सजाने की भी सोची! अम्मा ने सारे आतशदानों की सफाई की, तस्वीरें साफ की और गुलदस्तों को काट-छाँट कर लगाती रहीं। वैसे भी हर त्यौहार पर अम्मा ही सारे घर को सजाती रही हैं!

चिम्मी दीदी और मुन्नी ने सोचा कि इस अवसर पर अच्छे कपड़े पहनने चाहिए, इसीलिए वे दोनों जाकर अपने लिए बाईस-बाईस रुपए की दो पाटले पल्लू वाली साड़ी ले आयी, जो उन पर बहुत अच्छी लगती थी। बाबूजी भी उस दिन की याद को पक्का करनेके लिए चार टाइयाँ ले आए—दो अपने लिए, एक मेरे लिए और एक रम्मू के लिए। अम्मा के लिए भी उनकी पसन्द से एक साड़ी खरीदने की योजना थी, लेकिन बाद में पता चला कि उनकी एक साड़ी, जिसका रंग काफी दिन हो जाने से कई जगह हल्का पड़ गया था, उनके ऊपर अब भी बहुत खिलती थी और चिम्मी दीदी ने भी यही कहा कि अम्मा इस साड़ी में बहुत अच्छी लगती हैं। इसलिए सोचा गया कि बेकार एक और साड़ी खरीदकर रुपये क्यों नष्ट किये जायँ।

इस बीच अम्मा के लिए हमने एक चीजकी तैयारी कर रक्खी थी वह अचानक आश्चर्य में पड़ जाती! बात यह तय की थी कि नाश्ता करने के बाद ही हम लोग एक मोटर पर (जो किराये पर मँगाई थी)

बैठकर अम्मा को सैर कराने के लिए ले जायँगे। अम्मा को बहुत कम ऐसा मौका मिल पाता है कि वह कहीं घूमने-घामने जायँ। कुल मिला कर एक ही तो नौकरानी है, इसलिए अम्मा बेचारी दिन भर घर के ही कामकाज से छुट्टी नहीं पातीं! जो भी हो, आसपास के गाँव तो इतने सुन्दर हैं कि मोटर-यात्रा में अम्मा को बहुत मजा आता मीलों दूर सिर्फ मोटर पर ही! हमने सोचा कि अम्मा के लिए तो बहुत लुत्फ रहेगा!

सुबह उसी दिन प्रोग्राम थोड़ा बदल गया। बाबू जी ने यह सुझाया कि अम्मा को निरुद्देश्य टहलाने से अच्छा है कि उनको किसी काम के लिए ले चला जाय! उन्होंने कहा, वहाँ चल कर मछली का शिकार करेंगे। बाबू जी ने कहा कि : "भई, जब मोटर का किराया ही देना है तो क्यों न कुछ उपयोगी काम की चीज भी साथ ही साथ कर लिये जाएँ!" सचमुच बिना मतलब घूमने से तो अच्छा यही था कि कुछ काम सामने रहे उससे घूमने का मजा बढ़ ही जाता है!

गरज यह कि हम सब ने सोचा कि अम्मा के सामने एक उद्देश्य रहे तो अच्छा रहेगा। बाबूजी मछली मारने वाली एक नयी कंटिया भी ले आए जिससे तैयारी और भी निश्चित हो गई! बाबूजी ने कहा कि : "अब तुम्हारी अम्मा चाहें तो वह भी इसे इस्तेमाल कर सकती हैं, लेकिन हाँ, अगर चाहें!" वह तो कहते थे कि दरअस्ल यह अम्मा के लिए ही है! मगर खुद अम्मा ने ही कहा कि वह खुद मछली नहीं पकड़ेंगी, बल्कि उसका पकड़ना देखेंगी। यह भी ठीक ही था!

तो हम लोगों ने अपनी इस पिकनिक की पूरी तैयारी कर डाली! अम्मा ने कुछ डबल रोटियाँ काट कर रख लीं, कुछ पराठे सेंक लिए और थोड़ा-सा अचार भी रख लिया। हालाँकि आज दिन का खाना क्या था पूरी दावत थी! यानी पूड़ियाँ, कचौड़ियाँ, सिवइयाँ, जरदा और कई तरह की तरकारी। फिर भी कहीं देर हो गई तो क्या होगा, इसीलिए अम्मा ने सब कुछ एक डोलची में रख लिया!

मोटर आकर दरवाजे पर रुकी ! पर....पता लगा कि उस मोटर में उतनी जगह ही नहीं थी जितनी हम समझ बैठे थे ! बात यह थी कि बाबू जी की मछली मारने की टोकरी, जाल, लकड़ी, कँटिया और फिर यह खाने वाली डोल भी, इन सब का हिसाब तो हमने जोड़ा ही नहीं था ! उन्हीं से वह जगह भर गयी, जो अम्मा के लिए निकल सकती थी ।

बाबूजी ने कहा : "कोई परवाह नहीं, मैं नहीं चलूँगा ।" उन्होंने यह भी कहा कि वह घर पर ही रह जाएँगे और अपना सारा समय बाहर की फुलवारी में लगा देंगे । उन्होंने तो कहा कि बात यह है कि घर पर बहुत कूड़ा-करकट इकट्ठा हो गया है और आज छुट्टी मिली है सो वह इसका पूरा प्रबंध कर देंगे ! बेचारों ने यह भी कहा कि उनको यही बहुत है और हम लोग कोई चिंता न करें और अपनी इस छुट्टी का दिन पूरे आनन्द के साथ मनाएँ । और यह भी कि वह यह सोच लेंगे कि सचमुच छुट्टी का दिन आज भी नहीं था और वह जम कर काम करेंगे ।

लेकिन हम लोग समझते थे कि बाबूजी को घर पर छोड़ जाने से काम चलेगा नहीं । काम चलना क्या बल्कि घर पर तो एक मुसीबत ही खड़ी हो जाती । चिम्मी दीदी और मुन्नी रुक सकती थीं । घर पर रहकर नौकरानी को थोड़ी बहुत मदद भी देतीं खाना बनाने में; मगर फिर उन पर बहुत दया आयी हम लोगों को । बात यह थी कि नयी-नयी साड़ियाँ ले आयी थीं और ऐसे प्यारे दिन उन्हें घर पर ही छोड़ जाना कुछ अच्छा नहीं लगा ! मगर फिर भी वह कहती रहीं कि अम्मा कह दें तो हम घर पर रहने के लिए तैयार हैं ! मैं भी रुक सकता था और रामू भी, मगर क्या करें मजबूरी थी; हम लोग घर पर रहकर खाना बनाने में भला क्या मदद कर सकते थे !

खैर अन्त में यही तय हुआ कि अम्मा ही घर पर रह जाएँ और वह आज का मजेदार दिन बहुत आराम और शांति के साथ घर पर

ही बिताएँ। यह भी सोचा गया कि अम्मा को मछली-वछली के शिकार का कोई शौक तो है नहीं ! और फिर बाहर थोड़ी सर्दी भी थी। वैसे सर्दी क्या, कहने को तो धूप निकली ही हुई थी, मगर फिर सरदी तो सरदी ही थी ! अम्मा को भी सरदी लग ही सकती थी !

बाबूजी ने तो यहाँ तक कहा कि वह अपने आपको कभी भी क्षमा न करते अगर वह अम्मा को जबर्दस्ती गाँव-गाँव में इस सरदी में ले जाते और फिर उनको ठंडक खिलाते, जब कि वह ठाठ से आराम कर रही हैं ! अम्मा ने दिन भर की तैयारी के लिए इतना काम किया था कि उनको आराम देना सचमुच बड़ा जरूरी हो गया था ! बाबूजी ने बताया कि उन्होंने मछली के शिकार का प्रोग्राम ही इसीलिए बनाया था कि अम्मा को पूरी शांति और आराम मिल सके ! बाबूजी हम लोगों से कहने लगे कि : "भई, नौजवान आदमियों को तो इस बात का पता ही नहीं लगता कि हम बूढ़े आदमियों को शांति और आराम की कितनी जरूरत होती है !" उनकी अपनी काठी तो फिर भी मजबूत थी, मगर अम्मा की रक्षा तो करनी ही होगी !

उसके बाद "अम्मा की जै !" बोलकर हम लोगों की मोटर चल पड़ी। अम्मा बरामदे में खड़ी रहीं ! बाबूजी तो बेचारे मोटर से हाथ हिलाते-हिलाते थक गए। करीब-करीब आधी मील तक रूमाल हिलाया ! जब रूमाल हिलाना बन्द किया तो कहा भी कि। "अब मेरा ख्याल है कि तुम्हारी अम्मा न देख सकती होंगी।"

दिन भर बड़े ही मौज में बीता। तालाब के किनारे इधर-उधर खेतों में बड़ा आनन्द आया ! बाबूजी ने एक इतनी बड़ी मछली पकड़ी जितनी अम्मा कभी भी नहीं पकड़ सकती थीं। रामू और मैंने भी पकड़ी पर उतनी बड़ी नहीं जितनी बड़ी बाबूजी की थी ! चिम्मी दीदी को भी बहुत-से उनके दोस्त मिले और दीदी भी बहुत हँस-हँस कर बोलती रहीं !

जब लौटे तो बड़ी देर हो गई थी। मगर अम्मा जानती थीं कि हम देर से वापस आएँगे। इसलिए सारा खाना गरमागरम रक्खा हुआ था! बाबूजी ने अपने सब कपड़े-वपड़े कीचड़ में सान लिये थे। अम्मा ने साबुन तौलिए से उनका कीचड़ छुड़वाया। फिर मुन्नी को तैयार किया, फिर हम लोग खाने बैठे!

खाने का क्या कहना! अम्मा ने बड़ी मेहनत की थी! सादी पूड़ी और दालभरी पूड़ी भी, दही, श्रीखंड, रायता, भरा परवल, भिंडी, रसेदार तरकारी कई तरह की! यानी अम्मा ने हर एक की पसन्द की तीन-चार चीजें तैयार की थीं! अम्मा को कई बार इन चीजों को लेने-देने जाना भी पड़ा। बाबूजी ने तो कहा कि अम्मा को यह सब करना ही नहीं चाहिए। यहाँ तक कि बेचारे बाबूजी ने इल्मारी पर से मिठाई खुद ही उतार ली!

खाना बड़ी देर तक चला। उठने लगे तो हम लोगों ने कहा कि हम लोग आज सारी प्लेटें और कटोरियाँ साफ कर दें, लेकिन खुद अम्मा ही बोलीं कि रहने दो, वह मैं कर लूँगी। और हम लोगों ने भी उनको, एक बार ही सही, प्रसन्न करने के लिए उन्हीं का कहना मान लिया!

बड़ी देर हो गई और हम सब सोने के लिए अम्मा को नमस्ते कर करके चलने को हुए। अम्मा ने कहा कि सचमुच आज का दिन उनके लिए जीवन में बड़ा विचित्र और अजीब रहा है! और मेरा तो ऐसा ख्याल है कि उनकी आँखों में से पानी की कुछ चमक आ गई थी!! यही देख कर हम सभी ने सोचा कि हम लोगों ने दिन भर जो कुछ अम्मा के लिए किया है उसके लिए भर पाए!

(स्टीफ़न लोकाक की कथा के आधार पर)
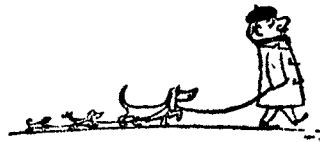
खोया रूपया

मेरे मित्र पं० राम उंजेर पाँडे पर मेरा एक रुपया उधार है। यानी कहने का मतलब यह कि उनको उधार लिये कोई बारह महीने से ऊपर होने को आ गया और अब मुझे विश्वास हो गया है कि उसके वापस होने की कोई संभावना नहीं रह गई है। जैसे-जैसे उनसे मिलता हूँ मेरा विश्वास दृढ़तर होता जाता है। वह तो मुझसे अब भी उसी तरह बिना किसी झिझक के मिलते-जुलते हैं। मेरा रुपया उनके दिमाग से साफ निकल गया है। मैं समझ गया हूँ कि अब वह मुझे मिलने वाला नहीं।

बदकिस्मती यह है कि मैं जानता हूँ कि मैं तमाम उम्र यह बात अपने दिमाग से नहीं निकाल पाऊँगा कि पाँडे जी पर मेरा एक रुपया बाकी है। मैं अपनी पूरी कोशिश करने के बावजूद भी, यह बात निकाल नहीं पाऊँगा अपने मन से! हालाँकि मैं सोचता हूँ कि यह बात हम लोगों की दोस्ती पर कोई असर नहीं डालेगी, लेकिन यह बात मूल तो

मैं नहीं पाऊँगा ! मैं यह नहीं जानता कि दूसरों के साथ भी कुछ इस तरह की बात होती है कि नहीं, मगर मेरे साथ तो यह बात है कि अगर किसी ने मुझसे कभी भी एकाध रुपया उधार लिया तो यह बात मैं चिता की सेज तक भुला नहीं पाता।

गरजे कि हुआ यह था। पं० राम उंजेर पांडे ने मुझसे ६ जून १६५५ को यह रुपया उधार लिया था (मैंने तारीख का हवाला इसलिए दे दिया कि कहीं पं० राम उंजेर यह लेख देखें तो मेरा बयान गलत न समझें) जब कि वह काश्मीर जा रहे थे। उस शाम को उन्हें रिक्शे के पैसे की जरूरत थी और मैंने वह रुपया उन्हें उधार दे दिया था। यह क्रिया इतने स्वाभाविक ढंग से हो गई कि उसकी अहमियत मैं तब तक नहीं समझ सका जब तक वह सारा किस्सा एकदम खत्म नहीं हो गया। उन्होंने मुझसे कहा, जरा एक रुपया तो देना, और मैंने फौरन हाँ-हाँ कह कर रुपया उनके हवाले किया। मैंने सोचा—सोचा क्या पूरा विश्वास था—कि पांडे जी ने जब यह रुपया लिया है तो वे मुझको वापस जरूर करेंगे।

उन्होंने मुझे काश्मीर से एक चिट्ठी भी भेजी थी। लिफाफा खोलते-खोलते तक मैंने सोचा था कि इसमें एक रुपए का नोट जरूर होगा और मैं शिष्टतास्वरूप उन्हें लिखूँगा कि अरे इसकी क्या जरूरत थी! ....मगर उसके अन्दर नोट तो नहीं था। उन्होंने लिखा था कि वहाँ का टेम्परेचर अधिक से अधिक ६७ या ७६ था। इन अंक संख्याओं को देख कर मैं थोड़ी देर के लिए भ्रम में पड़ गया।

पांडे जी काश्मीर से तीन सप्ताह बाद लौटे। मैं उनको स्टेशन पर ही मिला। जी, रुपए के लिए नहीं, मैं सचमुच उनकी दोस्ती की कद्र करता हूँ! मैंने सोचा, उन्हें यह अच्छा लगेगा कि तीन हफ्ते गायब रहने के बाद कोई आदमी प्लेटफार्म पर ही इंतजार करता हुआ मिले। मैंने उनसे कहा, 'आइए क्लब रोड तक के लिए एक रिक्शा कर लें।' मगर उन्होंने ने कहा—'नहीं, आइए पैदल चलें।'

और शाम को हम लोग साथ ही साथ रहे। बराबर काश्मीर की बातें चलती रहीं। मैं अपने उस रुपए के बारे में सोच जरूर रहा था लेकिन मैंने उसका तनिक भी जिक्र नहीं किया—बात यह है कि कोई भी नहीं कर सकता! मैंने पूछा, काश्मीर में कैसे सिक्के चलते हैं? वहाँ हमारा हिन्दुस्तानी रुपया बराबर उतरता है कि नहीं? (जानबूझ कर हिन्दुस्तानी रुपए पर जरा जोर दे कर कहा) मगर मैंने अपनी कमजोरी तो अनुभव कर ही ली कि मैं उस उधार वाले रुपए का जिक्र नहीं कर पाऊँगा!

यूँ तो राम उंजेर पांडे से सिविल लाइन्स में रोज ही मिला करता हूँ लेकिन यह समझने के लिए कि वह उस रुपए को एकदम भूल गए हैं, मुझे थोड़ा समय लगा एक दिन मैंने उनसे पूछा कि 'भाई तुम्हारा इस काश्मीर ट्रिप में कितना खर्च बैठा?' इस पर उनका उत्तर मिला कि वह इन छोटी-मोटी चीजों का कोई हिसाब-किताब नहीं रखते। थोड़ी देर बाद मैंने फिर पूछा कि क्या वहाँ से आकर अब ठीक-ठाक जम गए हैं आप?....इस पर उन्होंने कहा कि वह उस 'ट्रिप' के ही बारे में करीब-करीब भूलने लग गए हैं। और तब मुझे पूरा विश्वास हो गया कि सिनेमा खत्म होने की आखिरी घंटी बज गई है।

यह सब जो कुछ हुआ उसमें मुझे पांडे जी के प्रति कोई शिकायत नहीं है। मैंने अपनी उस लिस्ट में एक नाम और बढ़ा दिया जिन पर मेरा एक-एक, दो-दो रुपया उधार बाकी है और जो देना भूल गए हैं। ऐसे अब भी बहुत-से रह गए हैं—एक और सही। मैं अपने व्यवहार में कोई खास अंतर भी नहीं करता मगर मैं भगवान् से सिर्फ चाहता हूँ कि मैं यह घटना भूल जाऊँ।

पांडे जी से मेरी अक्सर मुलाकात होती रहती है। अभी-अभी परसों ही तो वह चौक में एक साहब के यहाँ दावत में मिले थे। राज-नीति की चर्चा हो रही थी। अमेरिका ने भारत को अनाज ऋण के रूप में दिया। उसका क्या प्रभाव पड़ेगा? यही सब वार्ता चल रही

थी ! आप सोच सकते हैं कि ऋण की बातचीत उनको अपने ऋण की याद दिला सकती थी ! है न ?....मगर नहीं !...उन पर तो पानी की बूँद की तरह बातें फिसलती रहीं ।

इस बीच में मेरे दिमाग में एक बात रह-रह कर बहुत परेशान किया करती है । वह यह है । जिस तरह से पांडे जी मेरा एक रुपया लेकर भूल गए हैं उसी तरह हो सकता है मैं भी किसी का एकाध रुपया उधार होऊँ और भूल गया होऊँ ! हो सकता है ऐसे आदमियों की भी एक पूरी लिस्ट हो !! और मैं जितना ही यह बात सोचता हूँ उतनी ही मुझे उलझन होती है और मैं नापसंद करता हूँ !

अगर ऐसे आदमी हैं तो मैं चाहूँगा कि वे सामने आएँ और मजबूती से अपनी बात कहें । सब एक साथ ही नहीं बल्कि जायज़ हिस्सों में बँट कर । हो सके तो एक क्रम से आएँ या अक्षरों की तरतीब से आएँ और मैं उन सब का नाम एक कागज़ पर चटपट लिख लूँगा ।

देखिए, एक बात मैं साफ कह देना चाहता हूँ । यहाँ मैं ऐसे आदमियों को नहीं गिन रहा हूँ जिनसे मैंने ब्रिज या ताश खेलते समय उधार लिया हो या मैं उनका उधार भी नहीं गिन रहा हूँ जिनसे मैंने सिविल लाइंस के किसी रेस्ट्राँ का बिल चुकवाया हो...(क्योंकि वह तो मेरा हक था ! आखिर मैंने भी तो अपनी बातचीत से उनका मनोरंजन किया !) और न मैं ऐसे उधार को गिन रहा हूँ जब मेरा टिकट सिनेमा के लिए जबर्दस्ती खरीद लिया गया हो । मगर जब कभी मैंने काश्मीर जाने के पहिले रिक्शे के पैसे देने के लिए किसी से उधार लिया हो तो वह रुपया मैं वापस दे देना चाहता हूँ !!....समझ गए न ?

इतना ही नहीं साहब ! मैं तो ईमानदारी पर चलने के लिए एक जनआंदोलन ही चलाना चाहता हूँ । जी हाँ, इस आंदोलन के जरिए मैं यह चाहूँगा कि जितने भी इस तरह के उधार लिए गए हों वह

वापस कर दिए जायँ !....हमें भूलना नहीं चाहिए । देश राष्ट्र आत्मा और परमात्मा सब की जड़ और बुनियाद ईमानदारी ही है ।

अंत में मैं खास तौर से अपने पाठकों से अनुरोध करता हूँ कि वे पुस्तक के इस पन्ने को ऐसी जगह न डालें जहाँ पांडे जी की निगाह पड़े और हर दुकानदार से अनुरोध है कि वे इस पन्ने में कोई भी सामान बाँध कर पांडे जी को न दें ताकि उनकी नजर पड़ जाय । ....मेरा मतलब उन्हीं पांडे जी से है जो क्लब रोड, सिविल लाइन्स में रहते हैं ।

(लीकाक का रूपान्तर)

शान्त पड़ोसी

यह पेटकिन महाशय भी विचित्र जीव हैं। इन्हें मैं काफ़ी अरसे से जानता हूँ। वैसे ये अविवाहित हैं और मेरे ही घर में रहते हैं। बड़े ही शान्त प्रकृति के हैं और चुपचाप अकेले ही पड़े रहते हैं। न तो कभी गाते-बजाते हैं और न ज़्यादा इधर-उधर उठते-बैठते ही हैं—बड़े ही गम्भीर और अत्यन्त विनम्र। फ़ैक्टरी की प्रयोगशाला में काम करते हैं।

अब आप को वह घटना सुनाने जा रहा हूँ जिसमें एक बार मैं और पेटिकन फँसे थे। मुझे उस घटना से इतना भय लगा था कि सोचता था अब प्राणान्त हो जायेगा। अब तो मेरे मन में इतना डर समा गया है कि मैंने निश्चित कर लिया है कि भविष्य में किसी को तैरना-वैरना नहीं सिखाऊँगा। बात ये है कि मैं ज़रा नर्वस टाइप का आदमी हूँ और मुझसे यह देखा नहीं जाता कि मेरे देखते-देखते कोई डूब जाये।

हुआ यह कि इस वर्ष मैं अपनी छुट्टियाँ मनाने के लिये समुद्र पर पहुँचा। पहिले ही दिन जब समुद्र के किनारे पहुँचा तो देखा, किनारे रेत पर पेटकिन महोदय पड़े हुए हैं। किनारे की कंकड़ियों पर पड़े-पड़े हज़रत अपनी देह धूप में सेंक रहे थे पर मैंने देखा वह समुद्रतट के पास नहीं जाना चाहता।

स्वभावतः मैंने उससे पूछा—

'नहाने के लिये क्यों नहीं चलते?'

मेरे सवाल से ही उसका चेहरा सुर्ख़ पड़ गया। उसने कहा—

नहीं-नहीं प्रोफ़ेसर निकोलइविच, मुझे तो अपने बचपन से ही पानी से बड़ा डर लगता है। मैं तो नदी तक से डरता हूँ, समुद्र की कौन कहे। समुद्र में तो आप कहीं अन्त भी नहीं देख सकते। बस चारों तरफ़ पानी ही पानी....और कुछ नहीं।'

पेटकिन विचित्र जीव तो था ही। उसका यह उत्तर मुझे बड़ा मज़ेदार लगा! उसका कथन अत्यन्त अस्वाभाविक था। एक नौजवान आदमी होकर भी वह पानी से डरता था! इन हज़रत का यह हाल है जब कि आजकल की लड़कियाँ तक इन खेल-कूद में भरपूर हिस्सा लेती रहती हैं। इसीलिये मैंने फिर पेटकिन से कहा—

'यह तो आपका बुरा हाल है! लड़कियाँ भी आप पर हँसेंगी। इस तरह से आप चल नहीं सकते मिस्टर! ज़रा अपनी ज़िन्दगी को बदलने की कोशिश कीजिये।'

बच्चों की तरह से लजा कर वह फिर बोला—

'देखिये यह तो मेरी प्रकृति है। अगर आप बने ही उसी तरह के हैं तो आप उसे कैसे बदलेंगे?'

मैंने आत्मीयता के साथ कहा—

'लेकिन तुमको तो सीखना चाहिये!....अरे मैं कहता हूँ मैं तुमको तैरना सिखा दूँगा। मैं ख़ुद इसकी ज़िम्मेदारी लेता हूँ।'

मैंने स्पष्ट देखा कि उसका चेहरा उतर गया और वह डर के मारे काँपने लगा ।

'क्या-क्या कह रहे हैं आप ?....मुझसे ये सब नहीं होगा ।....मैं कैसे इसे सीख सकता हूँ....अब तो मेरे लिए यह काम सीखने के लिये, बड़ी देर हो चुकी है । उम्र काफ़ी हो गई है ।'

'अरे नहीं जी ! तुम चिन्ता न करो । यह मेरी ज़िम्मेदारी होगी ! बस कल प्रातः काल से यह कार्य प्रारम्भ कर दिया जाय !'

उसने कुछ भी उत्तर नहीं दिया । इसका उत्तर भला हो भी क्या सकता था ? मैंने जिस ढंग से अपनी बात कही थी—उससे वह असहमत हो सकने में समर्थ नहीं था ।

अगले दिन मैं पेटिकन को तट की ओर ले चला । उसे देख कर लगता था कि जैसे वह फाँसी के तख्ते की ओर जा रहा है ! हाँ, क्षमा कीजियेगा, हम दोनों ही घर से नहाने के लिये तैयार हो कर चले ।

मैंने आदेश के स्वरों में कहा—

'अच्छा मिस्टर चलो ! उतरो पानी में !'

उसने अपनी आँखें मूँद लीं और पानी में घुस गया । बस, तमाशा वहीं से शुरू हुआ । जैसे ही वह घुटनें तक पानी में घुसा वैसे ही वह फिर भाग कर वापस आ गया । उसका चेहरा अधमरा हो रहा था । मैंने उसे फिर पानी में दौड़ाया मगर वह फिर बाहर भाग आया । उसे न जाने क्यों ज़मीन से ही बड़ा प्रेम उमगता था । एक घण्टे तक मैं बराबर बर्दाश्त करता रहा । इस भाग-दौड़ी में मुझे इतना पसीना आया होगा कि लगभग पाँच पौण्ड मेरा वज़न भी घट गया होगा ।

उसके बाद वह फिर तट की रेत पर आकर पड़ गया और मुझसे विनती करने लगा—

'दया करो मेरे ऊपर निकोलाइविच ! मैं इस जन्म में तैराक नहीं बन सकता ! मेरी और पानी की आज तक कभी नहीं बनी !'

लेकिन आज उसका मुझसे पाला पड़ा था ! मैंने कहा—

'अच्छा कल ! अब कल हम लोग अपना पाठ प्रारम्भ करेंगे ! समझे ? कल कोई बहाना नहीं चलेगा। तुम्हारी यही सज़ा है ! अब इसकी कोई—फ़रियाद नहीं सुनी जायेगी।'

दूसरे दिन पेटकिन के मुँह पर फिर वही हवाइयाँ उड़ रही थीं ! मेरी तरफ़ इस तरह घूर-घूर कर वह देख रहा था जैसे कि मैं उसे गोली मारने या फ़ाँसी पर चढ़ाने जा रहा हूँ।

'जाने दीजिये ! हटाइये ! क्यों आप....' वह बोला।

'नहीं ! चलो ! फ़ौरन कूदो पानी में ! कूदो अभी !' मैंने तेज़ स्वरों में कहा।

उसके पानी में चले जाने के बाद मैं भी उतरा और तैराकी के दो-एक हाथ उसे दिखाने और समझाने लगा। एक घन्टे में उसने कुछ हाथ चलाना सीख लिया, लेकिन पैरों की अब भी मुश्किल हो रही थी। हाथों को चलाने के बारे में वह समझ गया पर पैरों को कमर से ऊपर उठा कर फेंकना, उसकी बुद्धि में ही नहीं घुसता था। किसी तरह अलग-अलग तो दोनों पाँव उठा लेता था, पर दोनों साथ-साथ उठाना और चलाना उसके बूते की ही बात नहीं थी। मैं भी बिल्कुल थक गया था और लगता था कि और भी पाँच पौण्ड वज़न कम हो गया है।

अगले दिन फिर मैं पेटकिन को पकड़ कर समुद्र-तट पर लाया। उस दिन समुद्र का वातावरण कुछ तूफ़ानी था। मैंने पेटकिन से कहा—

'आज तुम्हारी क़िस्मत तेज़ है ! चलो बच गये ! आज का पाठ नहीं होगा। अब कल होगा !'

लेकिन, मैंने कहा न, पेटकिन बड़ा विचित्र जीव है। उसने अपने कपड़े उतारे और मुझसे कहा—

'अब तो धीरे-धीरे पानी से मेरी मित्रता होने लगी है। निकोला-

इचिच, तुम्हें बहुत धन्यवाद है इसके लिये। अब इसका सत्संग बना रहे इसलिये थोड़ा छप-छुप कर लूँ....यहीं किनारे पर ही....बस तब चलेंगे।'

और फिर क्या? मेरे उत्तर की बिना प्रतीक्षा किये ही वह पानी में घुस गया। मैंने चिल्ला कर कहा—

'अरे ज़रा सम्हल के! कहीं फँस गये तो लहरें खींच ले जायेंगी!'

पेटकिन कहीं नहीं दिखा! मैंने फिर अपनी पूरी शक्ति लगा कर उसे पुकारा। पर वह कहीं नहीं था। तूफ़ान बढ़ने लगा था और मेरी घबड़ाहट भी। मैं पुकारने लगा। एकाएक पानी में दस गज़ दूर मुझे एक आदमी हाथ-पैर फेंकता हुआ दिखाई पड़ा। मैं जल्दी से पानी में कूदा ताकि उसे बचा सकूँ! मगर लहरों के थपेड़े इतने ज़ोर के थे कि मैं वापस उलट कर फिर किनारे पर आ गिरा। अब तो मैं बहुत ही घबड़ा गया। मैं चिल्लाने लगा—

'दौड़ो, दौड़ो बचाओ....आदमी डूब रहा है...बचाओ....'

लोग दौड़ पड़े। जो बहादुर थे वे पानी के अन्दर भी घुस गये। तट का पहरेदार भी दौड़ा हुआ आ गया। मेरे होश-हवास गुम थे और विक्षिप्त सा टूटे-फूटे कुछ वाक्य कह रहा था, जिनके अर्थ मैं खुद भी नहीं समझ पा रहा था!

सहसा तूफ़ानी समुद्र में पचास गज़ पर एक व्यक्ति तैरता दिखाई पड़ा। कैसी शान से वह तैर रहा था। तूफ़ानी लहरें जैसे उसके लिये खेल हों। पास खड़े हुये मल्लाहों ने अपनी दूरबीन से देखकर कहा—

'अरे आप इसके बारे में चिन्ता न कीजिये! यह तो विख्यात पेटकिन तैराक है! इसने तो अब की देश की तैराकी का सर्वोच्च पुरस्कार पाया है भाई! पेटकिन का नाम आपने नहीं सुना?'

अब सब लोग मेरी तरफ़ देख रहे थे और हँस रहे थे! मैं एक मूर्ख की तरह खड़ा था और सोच रहा था कि धरती फट जाये और मैं उसमें समा जाऊँ।

यह पेटकिन बहुत ही दुष्ट है ! इस तरह की हरकत करने के लिये इसने मुझी को चुना !

मैं उस दिन इतना उखड़ा-उखड़ा रहा कि मैंने कसम खा ली है कि अब ज़िन्दगी भर किसी को तैरना नहीं सिखाऊँगा !

(जी० रिकलिन)
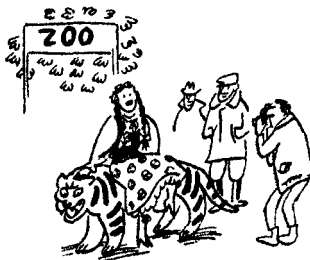
गाइड का फंदा

मैं माइकेल एंजिलो की महान प्रतिभा का कायल हूँ ! जो कुछ भी उसमें किया....कविता, चित्रकला, स्थापत्य, शिल्प, मूर्ति कला....सब में उसने अपनी महानता की छाप मार दी। लेकिन मैं अपने नाश्ते, जलपान, भोजन, चाय गरज यह कि दिन दुपहर रात—हर वक्त माइकेल एंजिलो के साथ नहीं रहना चाहता। समय-कुसमय जरा बहलाव रहे तो अच्छा रहता है।

जनेवा में सब कुछ माइकेल एंजिलो का किया-धरा है। मिलान में भी सब कुछ उसका या उसके शिष्यों का ही किया हुआ है....कोमी की झील तक उसी की बनाई हुई है। पेडुवा, वेरोना, वेनिस, बेलाग्ना, सभी जगह सिवाय माइकेल एंजिलो के गाइड ने किसी और का नाम ही नहीं लिया। फ्लोरेंस में भी माइकेल एंजिलो ने ही सारी चित्रकारी की थी और जो उसने नहीं बनाया था उसे वह एक पत्थर पर बैठ कर बराबर देखा करता था। गाइडों ने वह पत्थर ही दिखा

डाला। पीसा में भी सब कुछ उसी माइकेल एंजिलो ने ही किया था....सिवाय उस प्रसिद्ध मीनार के। अगर मीनार कहीं सीधी होती तो गाइड ने उसी के नाम वह भी लाद दी होती। कहीं तो उसने कस्टमहाउस की नियमावली तक बना दी है और कहीं....खैर। उसने सेंट पीटर की डिजाइन बनाई, पोप की डिजाइन बनाई, पोप के नौकरों और सिपाहियों की पोशाकें बनवाई, रास्तों की डिजाइन करवाई, बाँधों के नक्शे बनाए, पहाड़ों की डिजाइनें की, वेटिकन शहर की डिजाइन की और अगर सभी लोग झूठ नहीं बोलते तो उस शहर की हर चीज की डिजाइन माइकेल एंजिलो ने ही की। मेरे मित्र ने उस दिन ऊब कर गाइड से कहा....

"बस करो भाई। मैं समझ गया! संक्षेप में यूँ कहो कि परमात्मा ने माइकेल एंजिलो से डिजाइन बनवा कर इटली बनाया!!"

अपने जीवन में ऐसी शान्ति, ऐसा चैन और ऐसी स्थिरता बहुत कम मिली होगी जैसी उस समय मिली जब हमें पता चला कि माइकेल एंजिलो मर गये हैं।

यह तथ्य हमने अपने गाइड के ही ज्ञान-भण्डार में से निकाला है। वेटिकन की मीलों लम्बी-लम्बी चित्र गैलरियों के उसने हमें चक्कर कटवाए और बीसियों जगहों में घुमाया। न जाने कितने गिरजों की खाक छनवाई और उनके भित्ति-चित्र दिखवाए....और अंततोगत्वा यही पता चलता कि सब काम माइकेल एंजिलो का ही था। हार कर हमने अपने गाइड पर वह चाल चली जिससे बहुतेरे गाइड चारों खाने चित्त हो जाते हैं अर्थात् हमने उससे बहुत बेहूदे और मूर्खता-पूर्ण प्रश्न करने शुरू कर दिए। गाइडों को दूसरों की मूर्खता पर संदेह करने की बुद्धि नहीं होती।

उसने एक आकृति की ओर उँगली उठाई और कहा...."स्टेट ब्रांचों : [कांस्य मूर्ति]

हम लोगों ने बहुत उपेक्षापूर्वक उसकी ओर देख कर कहा....
"माइकेल एंजिलो की बनाई है?"

"नहीं....यह तो पता नहीं किसकी...."

फिर एक रोमन फ़ारम दिखाते हुए घूमा। मित्र ने पूछा...

"यह भी माइकेल...."

गाइड ने घूर कर देखा....

"यह तो उसके जन्म से हजार बरस पहिले का है

आगे एक मिस्री मूर्ति दिखलाई पड़ी। पूछा—

"यह भी माइकेल........?"

"नहीऽऽसाहब यह तो उसके जन्म से दो हज्जार बरस पहिले की बनी है।"

कभी-कभी तो वह हम लोगों के प्रश्न से इतना खीझ उठता कि हम लोगों को लगता कि अब यह हमको कुछ नहीं दिखलायेगा। हज़रत से जितना भी बन पड़ा, जैसे भी हुआ उन्होंने हमको हर तरह से यकीन दिलाने की कोशिश की थी कि माइकेल एंजिलो ही संसार के एक भाग के निर्माण के लिये उत्तरदायी है। लेकिन उन्हें खास सफलता नहीं मिली। बात ये है कि इन वस्तुओं को देखने सुनने में दिमाग और आँखों पर जो जोर पड़ता है उसके लिये कुछ लुत्फ़दार आराम देना ही पड़ता है। गाइड को इसीलिये यह भार अपने सिर पर उठाना पड़ता है। अगर वह इसको खुश-खुश झेल जाता है तो ठीक है, नहीं तो वह जाने और उसका काम। कम से कम हम लोगों को तो आनन्द मिलता ही है।

विलायती गाइडों के भी विचित्र रंग होते हैं। अक्सर पर्यटक सोचते हैं कि इनके बिना ही काम चल जाता तो बड़ा अच्छा था लेकिन जब नहीं चल पाता, और हार कर उनकी सत्ता स्वीकार करनी ही पड़ती है तो फिर यही एक सहारा रहता है कि उनके लदे हुए सत्संग से भरपूर आनन्द उठाया जाय। हम लोगों ने इस तरह से

बराबर आनन्द उठाया है और अपना अनुभव सब के लाभ के लिये लिखे दे रहा हूँ।

जिनेवा में साधारणतः अमरीकियों को देख कर गाइड बड़े खुश होते हैं—क्योंकि अमरीकी कोलम्बस का कोई भी अवशेष देखते ही इतने विस्मित, चकित और भावुक हो उठते हैं कि उस भावुकता को कोई भी चतुर आदमी भुना सकता है। हमें देखते ही हमारा गाइड गद्दे की तरह फूल गया। उसके मुख पर प्रसन्नता की लहर दौड़ गई और वह बड़ी बेसब्री के साथ बोला—

"आइए आइये शिरीमान मेरे साथ आइये। मैं आपको क्रिस्टोफ़र कोलम्बो का पत्र दिखलाऊँ! कोलम्बो का! खुद का लिखा हुआ! खुद अपने हाथ का लिखा है। आइये आइये मेरे साथ।"

उसके बाद वह हम लोगों को स्थानीय म्युनिस्पैलिटी के दफ्तर में ले गया। इधर-उधर उसने बहुत दौड़-धूप की। लपक-लपक कर कभी यह दराज़ खोली, कभी वह दराज़ खोली, कभी एक कुंजी निकाली कभी दूसरी चाभी ढूँढ़ी। हर तरस से उसने हमें प्रभावित करने की चेष्टा की। इन तमाम अभिनयों के बाद उसने एक बहुत पुराना गंदा और दाग़ी दस्तावेज़ हमारे सामने फैला दिया। गाइड की आँखें चमक रही थीं। हमारे चारों तरफ़ नाच-नाच कर उस दस्तावेज पर ठुनकियाँ मारता हुआ वह कहने लगा—

"देखिये देखिये शिरीमान जी हम क्या बोला था। आप खुद देखो क्रिस्टोफ़र कोलम्बो की रायटिंग! कैसा बढ़िया लिखा है। उन्होंने खुद लिखा है।

हम लोग बड़े उदासीन भाव से खड़े थे। हमारे साथी ने कागज पर झुक कर एक बार बड़े ग़ौर से पड़ताल की और फिर बड़ी अरुचि से साथ बोला....

"हाँ जी। क्या....क्या नाम बतलाया था तुमने। किसने लिखा है इसको?"

"क्रिस्टोफ़र कोलम्बो । शिरीमान जी । वही क्रिस्टोफ़र कोलम्बो ।"

उसके बाद मित्र द्वारा झुककर फिर ग़ौर से कागज़ देखा गया ।

"ओ...........खुद उसने लिखा था या कि....कैसे लिखा गया था !"

"उसने खुद लिखा था । खुद क्रिस्टोफ़र कोलम्बो ने । उसी के हाथ की लिखावट है । खुद हाथ की ।"

मित्र ने कागज़ से ध्यान हटा कर कहा...

"अच्छा । हमारे अमरीका में तो चौदह बरस के लौंडे इससे अच्छी हैंडराइटिंग लिखते हैं ।"

"लेकिन शिरीमान जी ये तो उस महान क्रिस्टोप....

"मुझे इससे मतलब नहीं कि किसकी है । लेकिन है ये बहुत सड़ियल राइटिंग । ये न समझना कि हम परदेशी हैं तो तुम्हारे चरके में आ जायेंगे । हम मूर्ख नहीं हैं । अगर तुम्हारे पास कोई बढ़िया मोती जैसे अक्षरों वाली लिखावट हो तो दिखाओ नहीं तो आगे चलो ।"

और हम आगे चले । हमारी इस हरक़त से गाइड सहम।तो काफी गया था । उसने एक अवसर फिर लिया । अबकी उसने सोचा कि वह हमको अभिभूत कर देगा, बोला :

"हमारे साथ आइये शिरीमान जी आपको अबकी क्रिस्टोफर कोलम्बो की बढ़िया मूर्ति दिखाती हूँ । एकदम बढ़िया । बहौत खूबसूरत ।"

और वह हमको सचमुच एक सुन्दर मूर्ति के सामने ले गया । उसे दिखाते हुये वह फिर उछल पड़ा और खास लहजे में बोला....

"देखा, देखा ! देखा शिरीमान जी ! क्रिस्टोफ़र कोलम्बो की !! है बढ़िया मूर्ति कि नहीं ! है न !"

हमारे मित्र ने ऐसे मौकों के लिये एक खास चश्मा रख छोड़ा है । आँख पर उसे चढ़ाते हुये बोले—

"हाँ साहब आपने इनका क्या नाम बताया ?"

"क्रिस्टोफ़र कोलम्बो। शिरीमान जी महान क्रिस्टोफर कोलम्बो।"

"क्रिस्टोफ़र कोलम्बो ? महान क्रिस्टोफ़र कोलम्बो ? अच्छा, इन्होंने क्या किया था ?"

"अमरीका की खोज की थी शिरीमान जी, अमरीका की। ये तो आप जानते ही होंगे ?"

"अमरीका की खोज। न न....हम लोग तो खुद ही अमरीका से आ रहे हैं। हमने तो ऐसा कुछ नहीं सुना। क्रिस्टोफ़र कोलम्बो।.... नाम तो अच्छा है। क्या जीवित हैं ?"

"या परमात्मा। अरे शिरीमान जी उनको तो मरे तीन सौ साल हो गया।"

"अच्छा। अच्छा। कैसे मर गये ?"

"हमें पता नहीं....शिरीमान जी।"

"मेरा ख्याल है कि चेचक रही होगी।"

"शिरीमान जी मुझे नहीं मालूम। हमें पता नहीं कि वह कैसे मरे।"

"हो सकता है कि खसरा ही रहा हो।"

"हो सकता है हो सकता है शिरीमान जी। किसी चीज से मरे ही होंगे।"

"माँ बाप तो जिन्दा होंगे।"

"अरे नहीं साहब। आप भी क्या कहते हैं !"

"अच्छा इन मूर्तियों में आधी कौन है और पूरी कौन है ?"

"अरे शिरीमान जी। ये देखिये ये अद्धी और ये पूरी।"

"वाह ये खूब है। अद्धी अलग और पूरी अलग। अच्छा तो पहले ये अद्धे रहे होंगे फिर पूरे हुये होंगे।"

गाइड इस मजाक को नहीं समझा।

कल हम लोगों ने वेटिकन में दो-तीन घन्टे बिताये और वहाँ

अनेक विस्मयकारी वस्तुएँ देखते रहे। कुछ चीजें बेहद पसन्द आईं। कुछ चीजों की तो प्रशंसा न करना एकदम असम्भव ही लग रहा था फिर भी हम लोगों ने किसी तरह अपनी जबान पर काबू पाया। इस तरह से आज तक वेटिकन के अजायबघर में अपनी जबान पर किसी ने भी काबू न किया होगा। गाइड हम लोगों की इस हरकत से भौचकित था। वह इधर से उधर जैसे अपने पावों को तिलांजलि देकर दौड़ रहा था कि हमें कुछ न कुछ ऐसा दिखा सके कि हम चित्त हो जायें। लेकिन हम लोगों ने किसी भी चीज में कोई रुचि नहीं दिखाई। किन्तु उसने अन्त में छोड़ने के लिये एक रामबाण सुरक्षित रक्खा था....मिस्र की एक शाही ममी। संसार भर में वह ममी उत्कृष्ट ढंग से रक्खी गई थी। गाइड हमें उसके पास ले गया। उस ममी की उत्कृष्टता के विषय में उसे इतना विश्वास था कि सहसा उसका पुराना उत्साह फिर लौटा....

"देखा जनाब...ये है ममी ! ममी है ये।"

मेरे मित्र की आँख पर चिरपरिचित चश्मा बहुत शान्त भाव से फिर चढ़ा।

"हाँ जी, क्या नाम आपने इनका बताया ? मैं समझा नहीं।"

"नाऽऽम ? इसका कोई नाम नहीं है....ममी है...मिस्री ममी।"

"अच्छा अच्छा यहीं का जन्म है ?"

"नहीं ! मिस्री ममी है।"

"अच्छा अच्छा, मेरा ख्याल फ्रेंच होंगे।"

"नहीं...नहीं साहब न तो यह फ्रेंच हैं न जर्मन, यह तो 'इजिप्टा' के हैं !"

"इजिप्टा" का जन्म है ? अच्छा कभी "इजिप्टा" का नाम नहीं कैसा सुना। परदेश होगा। ममी।....ओ ममी !!....ओहो कैसा शान्त, कैसा आत्मलीन....आ हा। क्या....क्या ये मर गया ?

"अरे आपका भला हो। इसे तो जनाब मरे हुए तीन हज्जार साल हुये।"

अबकी मेरे मित्र बरस पड़े...

"क्या !....ये क्या बेहूदगी है ! हमको परदेसी समझ कर बेव-कूफ बना रहे हो ये सेकेन्ड हैन्ड, सड़ी हुई लाश हमारे ही सिर थोपने को रह गई है। हुँहूँ........वाहियात। अगर तुम्हारे पास कोई ताजी बढ़िया लाश हो तो उसे दिखाओ। नहीं तो हम अभी तुम्हारे दिमाग में भुस भर देंगे। बड़े चले तीन हजार साल पुरानी लाश लेकर के हमें दिखाने।"
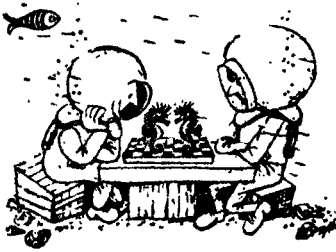
बाप दादों की कील

हाजी जी ने जब अपना मकान बनवा लिया तो चैन की साँस ली। ऐसा मकान उस शहर में किसी के पास नहीं था। जो देखता वही यह कहता कि ऐसा मकान और किसी ने नहीं बनवाया। हाजी जी ने जब यह देखा तो उन्होंने अपना मकान अच्छे दामों में बेच डालने का निश्चय किया। उनका निश्चय जान कर बहुत-से लोग मकान खरीदने के लिए आने लगे। हाजी जी ने मकान खरीदने वालों के सामने सिर्फ़ एक शर्त रक्खी....वह सारा मकान देने के लिए तैयार थे बस बात इतनी थी कि एक कमरे में एक कील गाड़ी हुई थी जिस पर वे अपना अधिकार चाहते थे। बातचीत होते-होते अंततः एक आदमी इसके लिए तैयार हो गया। हाजी साहब एक छोटी-सी कील पर ही तो अपना अधिकार चाहते थे। उस आदमी ने सोचा चलो कोई बात नहीं। मकान अपना रहेगा। एक कील हाजी साहब की ही रहेगी।

मकान बिक गया। शर्त के साथ लिखा पढ़ी हो गई।

नए आदमी ने मकान ले लिया और उसमें जम गया।

आधीरात बीत चुकी थी। सब ओर सन्नाटा था। लोग अपने-अपने घरों में खर्राटे भर रहे थे। एकाएक मकान के दरवाज़े पर दस्तक सुन कर नए खरीददार ने पुकारा....

"कौन है?"

बाहर से आवाज़ आई....

"मैं हूँ हाजी। ज़रा दरवाजा खोलिएगा।"

उस आदमी ने आकर दरवाजा खोल दिया। और घबरा कर पूछा....

"कहिए क्या बात है?"

हाजी जी घर के भीतर आ गए और रहस्यपूर्ण ढंग से बोले....

"बात यह है भाई कि वह जो मेरी कील है न, उसमें मुझे एक छोटी-सी डोरी बाँधनी है।...ज़रूरी काम था, इसलिए सोचा कि आपको ज़रा तकलीफ तो होगी लेकिन डोरी बाँधनी ही थी.... इसलिए...."

उस आदमी ने कहा....

"नहीं-नहीं कोई बात नहीं। आप बाँध लीजिए डोरी।"

हाजी जी हीं-हीं करते रहे और जाकर अपनी कील में एक रेशमी डोरी बाँधते रहे। कील को ज़रा मज़बूत करके वह उस रात चले गए।

दो-तीन दिन तक कोई घटना नहीं घटी।

चौथे दिन जब नया मकान वाला खाना खाकर सोने जा रहा था, उसके दरवाजे पर दस्तक हुई! दरवाजा खोलते ही देखा तो हाजी साहब खड़े थे।

"आइए।" कह कर वह आदमी उनका स्वागत करने लगा।

हाजी जी ने फिर अपनी हीं-हीं चालू की और बोले....

"वह ज़रा अपनी कील है न, उसमें ज़रा पालिश कर देना चाहता हूँ। बात यह है कि लोहे लक्कड़ की चीज़ों पर अगर पालिश कर दी जाय तो वह बहुत दिनों तक चलती रहती है लेकिन यूँ ही छोड़ देने पर बड़ी जल्दी खराब हो जाती है। आप तो देखते ही होंगे, यह मकान मैंने जिस कायदे से बनवाया है वह तो आप से छिपा नहीं है। हर चीज़ अव्वल दर्जे की है। बस यही कुछ चीजों पर पालिश रह गई है सो कब मैं इस कील पर अगर पालिश कर दूँ तो इसकी उम्र बढ़ जाय।"

उस आदमी को हाजी जी का उस वक्त आना कुछ पसन्द नहीं आया। कुछ रूखे स्वरों में उसने कहा....

"जी हाँ! ठीक है। पालिश कर लीजिए।

हाजी जी ने बाहर खड़े दो आदमियों को भीतर बुला लिया। उनमें से एक ने पहिले डोरी खोली फिर दूसरे ने उस कील पर पालिश करनी शुरू की। पहिले एक कोट चढ़ाया फिर उसे सूखने में आध घन्टे लग गए। आध घन्टे बाद उस कील पर दूसरा कोट चढ़ाया। जब वह भी सूख गया तब उस पर डोरी बाँधी और तब जाने के लिए तैयार हुए। हाजी जी जाते वक्त फिर माफ़ी माँगने लगे....

"माफ करना भाई। दरअस्ल 'काम में वक्त तो लगता ही है। अब ये कारीगर लोग हैं। जब तक काम ठीक से न कर लें तब तक अधूरा काम छोड़ कर भी नहीं जा सकते।...हीं-हीं-हीं....इन्हें भी तो अपने पूरे पैसे की फिक्र रहती है। हम तो दिन में ही आ जाते पर हमने सोचा कि रात में आप जरूर मिल जायँगे। आपकी मौजूदगी में ही यह सब काम होना चाहिए ...क्योंकि मकान तो आपका ही है.... ही-ही-ही... मेरा क्या, मेरी तो यह ज़रा-सी कील है....और फिर यह कील भी अपने बाप-दादों की न होती तो मेरा क्या जहाँ इतना बड़ा मकान बेंच दिया वहाँ यह कील भी बेंच देता—तकलीफ तो आपको हुई ही पर....काम भी तो होना ही था....।"

आदमी के तेवर कुछ चढ़े हुए थे पर फिर भी शिष्टता दिखाते हुए बोला...

"टीक है। आपका काम हो गया हो तो ठीक है। आदाबअर्ज़।"

हाजी जी अपने कारीगरों के समेत चले गये। शहर में इधर-उधर इसकी चरचा होने लगी। लोग कहते थे कि हाजी जी अपने बुजुर्गों की कील के पीछे जान देते हैं। घर नया हो गया, बिक गया मगर कील को उन्होंने जान से बढ़कर रक्खा।

नए खरीददार के लिए यह कील सरदर्द होने लगी। जो मिलता वही उस कील के बारे में पूछता। कोई कहता कि वह कील किसी तहखाने की कुंजी है जिसमें हाजी के बाप-दादों का खजाना है। कोई कहता कि उस कील में एक जिन्नात रहता है। सब उसका असली रहस्य जानने के लिए इस आदमी को चौक बाजार, चौराहे, दूकान, कचहरी सब जगह घेरते।

दिन भर उस कील के बारे में उड़ी हुई अफवाहों के उत्तर देता हुआ जब वह आदमी थक कर घर पहुँचा और अपनी चारपाई पर पड़ गया तभी उसे दरवाजे पर दस्तक सुनाई दी। एकाध बार उसने सुन कर अनसुना कर दिया। पर दस्तक धीरे-धीरे धमधमाहट में बदलती चली गई। हार कर उसने दरवाजा खोला। सामने ही हाजी साहब खड़े थे। उसे देखते ही हाजी साहब कुछ ऊँची आवाज़ में बोले....

'वाह साहब वाह। आप तो घोड़े बेंच कर सोते हैं। अब मैं अपनी कील तक पहुँचने के लिए दो घंटे आप की मिन्नत करूँ तो वहाँ तक पहुँचूँ।....ऐसे ही है तो आप इस दरवाजे की एक चाभी मुझको दे दीजिए जिसमें जब भी आप इस तरह से बेखबर सो रहे हों मैं कम से कम अपना काम तो कर सकूँ।'

उस आदमी ने कहा....

'लेकिन आप वक्त बेवक्त इस तरह मुझे परेशान करते हैं। आप अपनी कील ले जाइए।'

'कील कैसे ले जाऊँ। वह तो शर्तनामे में लिखी हुई है। कील रहेगी और इसी मकान में रहेगी।...एक तरफ़ हट जाइए....मुझे ज़रा अपनी कील में से डोरी खोलनी है।

हाजी जी ने शर्तनामे की बात की तो वह आदमी चुप हो गया। उन्होंने जाकर उस कील में से डोरी खोली और एक नया फ़ीता बाँधा इस बार जाते समय न तो उन्होंने माफ़ी माँगी और न दोनों में कोई अभिवादन ही हुआ।

दूसरे दिन से वह आदमी मकान बेचने के लिए शहर में इधर-उधर दौड़ने लगा। पर कील के डर के मारे कोई भी लेने को तैयार न हुआ। हार कर किसी तरह से वह हाजी जी से ही अपना मकान वापस ले लेने के लिए विनती करने लगा।

हाजी जी ने जिस दाम पर बेचा था उसकी चौथाई कीमत लगा कर वह मकान फिर खरीद लिया और जिस चैन के लिए उन्होंने वह मकान बनवाया था वह उन्हें वापस मिल गया और साथ ही उस मकान की पूरी लागत भी !!

इस कथा से कुछ शिक्षाएँ मिलती हैं :

(अ) अपने बाप-दादों की कील गाड़ने वाले सदा आनन्द करते हैं।

(ब) सस्ता सौदा देख कर ही मत दौड़िए। पहिले पता कर लीजिए कि सारा माल आपका...सिर्फ़ आपका ही रहेगा।

(द) एक कील की ज़हमत से हार कर पूरा मकान बेचने वाले मूर्खों को अपना मित्र न बनाइए।

(एस० एस० काक्स की नीति कथा पर आधारित)

खून का भूत

मैं जासूसी किस्से-कहानियाँ पढ़ने का बहुत ही शौकीन हूँ। अब तक तो यही हाल रहा है, लेकिन अब लगता है कि इसे छोड़ना पड़ेगा। इसकी वजह से अपनी रोजमर्रा की जिन्दगी दूभर हो जाती है। हर वक्त मैं किसी रोमांचकारी घटना की कल्पना करता रहता हूँ। कभी सोचता हूँ कि बस अभी 'अपराधी झपट कर कोने से निकलेगा' और मुझे तत्काल उसके 'झपट कर निकलने' का वक्त नोट करना पड़ेगा।

बात यह है कि इन कहानियों से सभी घटनाओं का वक्त पूरी तरह से नोट कर लिया जाता है; क्योंकि आगे चल कर उसी से तो गवाही निकाली जाती है। इसी वजह से दिन भर मुझे हर चीज का वक्त ही नोट करते बीतता है; क्योंकि मैं सोचता हूँ कि कहीं वक्त पर मेरी गवाही कच्ची न निकल जाय!

अभी पिछले तीन ही चार दिन की बात है कि मैं अपने मित्र

जिमी डगलस के यहाँ खाना खाने गया। वह अकेले ही रहता है। मात्र यह तथ्य ही इस बात के लिये काफी है कि उसके यहाँ आने-जाने वाले शंकालु दृष्टि से उसके घर आने-जाने का वक्त नोट करना शुरू कर दें ! उसके दरवाजे पर पहुँच कर मैं ठहर गया। रुक कर रोशनी में घड़ी देखी। ठीक सात बजा था। यद्यपि सड़क की एक घड़ी में सात बज कर दो मिनट आधा सेकेंड हो चुका था। अपनी घड़ी को एक मिनट सुस्त मान कर मैंने हिसाब से सात बज कर एक मिनट पौन सेकेंड टाइम नोट किया।

मैंने यह क्यों किया ? आप समझे नहीं ? यूँ समझिए कि अगर मैंने दरवाजे पर घंटी बजाई होती, और कोई जवाब न मिलता फिर मैं जबर्दस्ती दरवाजे पर धक्का मार कर उसे तोड़ डालता (टूट ही जाता !) और भीतर घुसता तो देखता कि जिमी डगलस का शरीर दरवाजे के सामने पड़ा है तो वहाँ वक्त के नोट करने की जरूरत पड़ती ! समझे ? और यदि उसकी देह गर्म रहती (बेचारे की देह गरम रहनी ही चाहिये !) तो फिर टाइम नोट किये रहने से यह पता चल जाता कि देह कितनी देर से कितनी गरम है।

खैर मैंने घंटी बजाई। एक चीनी नौकर बाहर निकला और मुझे चुपचाप बैठक तक ले जाकर उसने इशारे से बैठने के लिये कहा। रोशनी हो रही थी और कमरा देखने में खाली लगता था ! 'देखने में' मैं इसलिए कह रहा हूँ कि ऐसी कहानियों में आगे क्या होगा, आप कुछ नहीं जानते ! अगर कहीं डगलस का शरीर गठरी बना किसी कोने में पड़ा होता (आप तो यह जानते ही होंगे कि वे लोग कैसे आदमियों के शरीर को गठरी बना कर डाल देते हैं ! !) तो मेरा यह कर्तव्य था कि मैं कमरे में चारों तरफ ऊपर-नीचे खूब अच्छी तरह से देखूँ भालूँ—बस सिर्फ एक जगह को छोड़ कर यानी जहाँ वह सच ही मुच हो !

यही मैंने किया भी। तब तक सामने के आतिशदान पर एक

घड़ी दिखाई पड़ी जिसमें सात बज कर चार मिनट हो चुके थे। बिल्कुल मेरी घड़ी के हिसाब से टाइम ठीक था।

मैं उसे फिर से मिला ही रहा था कि डगलस भीतर आया।

मैंने उसका तौर-तरीका देखा। यही कह सकता हूँ कि अतिशय साधारण ढंग से व्यवहार कर रहा था। कोई खास उत्तेजना या उत्साह भी नहीं था। काफी मौन-सा था! उस पर किसी रासायनिक विष का प्रभाव था या मुझे देखते ही यह हाल हो गया था, यह मैं कहने के लिये अभी तैयार नहीं हूँ।

हम लोगों ने मधुपान का गिलास उठाया। डगलस के हाथों की दो उँगलियों की स्पष्ट छाप उस पर आ गई। मैंने बहुत सफाई से किनारे से पकड़ा ताकि निशान न बनने दूँ!!

साढ़े सात बजे भोजन करने बैठे। इसका तो मुझे पूरा यकीन है कि यही वक्त रहा होगा क्योंकि डगलस ने भी कहा था कि साढ़े सात बज गए और जैसे ही वह बोला वैसे ही आतिशदान पर रखी हुई घड़ी ने भी साढ़े सात का घंटा बजाया था! इसकी एक पुष्टि ऐसे भी हुई कि उसी वक्त डगलस का चीनी नौकर भीतर आया और उसने 'साढ़े सात बज गए।' ऐसा कहा। इससे पता यही चलता है कि या तो ठीक साढ़े सात बज गए रहे होंगे या जरा-सा कम रहा होगा या जरा-सा ज्यादा हो गया होगा।

खैर, बहुत विस्तार में गए बिना, आप समझें कि हम लोग खाना खाने बैठे। मैंने ध्यान से देखा कि डगलस साहब ने शोरबा बिल्कुल नहीं खाया पिया। उस वक्त मैंने इस बात को ज्यादा महत्व इसलिये नहीं दिया को आगे क्या होता है, उसे ध्यान से देखूँगा! मैंने भी अपनी तरफ से इसका ध्यान रक्खा कि मछली बिल्कुल ही न खाऊँ! इस ढंग से एकाध चीजों का क्रम उलट-पुलट कर मैं यह पता लगा ही लूँगा कि यदि खाने में कोई रासायनिक विष मिलाया भी गया है

तो वह कैसे काम कर रहा है ! यहाँ तक चीनी नौकर बिल्कुल चीनियों की तरह साधारण ढंग से व्यवहार कर रहा था ।

मुझे याद नहीं कि खाने के बाद डगलस ने खाने के बाद कॉफी पिया था या नहीं ! भूल गया ! ! थोड़ी देर के लिये मैं उससे कुछ राजनीति के दाँव-पेंचों की बातें करने लगा। इसी दौरान में मैं यह भी भूल गया कि कब किस टाइम पर क्या बात हुई और उसने क्या खाया और क्या नहीं खाया ! इस व्यतिक्रम के कारण इस पूरे लेखे-जोखे में एक बेतुका अंतर पड़ ही जायगा ! !

मैंने देखा कि खाने के बाद डगलस का मन बातें करने में नहीं लग रहा था। मैं तो उसके सामने युद्ध में मित्रराष्ट्रों के दाँव-पेंचों की चर्चा करता जा रहा था और वह हजरत ऊँघते से दिखाई पड़ रहे थे। स्पष्टतः यह किसी रासायनिक विष की ही प्रतिक्रिया हो सकती थी !

नौ बजे मैं उठा। डगलस भी उठ पड़ा। घड़ी ने नौ बजाए। 'अच्छा अभी तक नौ ही बजा है। मैं तो समझा था कि दस बज गए होंगे !' डगलस ने जमुहाइयाँ लेते हुए कहा।

घर, मैं एक टैक्सी में गया। उस टैक्सी को मैं आसानी से हजारों में पहचान सकता हूँ। चाहे वह पत्थरों के अंगड़-खंगड़ के ढेर में भी डाल दी जाय। मैंने चुपके से उस पर जो निशान बना दिया है, उसके सहारे मैं चटपट उसे खोज सकता हूँ। टैक्सी ड्राइवर की भी मैं पूरी तरह शिनाख्त कर सकता हूँ क्योंकि उसके मुँह पर एक चोट का निशान है, यह मुझे अच्छी तरह याद है।

जैसा मैंने कहा, यह सब हुए तीन दिन हो गए हैं। हर सुबह मैं काँपते हाथों से अखबार खोलता हूँ। हर रोज यही आशंका रहती है कि आज डगलस का मृत शरीर का विवरण छपा होगा ! लेकिन शायद अब तक उन्हें पता ही नहीं लग पाया होगा ! मुझे यह भी पता नहीं कि वह जीता ही रहा ! लेकिन जनाब जब तक किसी को मृत

शरीर का पता न चले तब तक कौन उसकी मृत अवस्था को जान ही सकता है ?

खैर ! एक बात तो तै है । मैं तैयार हूँ अगर....। अगर कोई बुरा समाचार मिले तो मैं तत्काल अपना काम पक्की तरह से निभा सकता हूँ । मेरे पास टैक्सी ड्राइवर की शिनाख्त है, उँगलियों के छापे हैं, और घड़ी के टाइम हैं—और ऐसे किस्सों में सिर्फ इन्हीं चीजों की जरूरत प्रायः पड़ती रहती है !

—स्टी० लीकाक का भावानुवाद
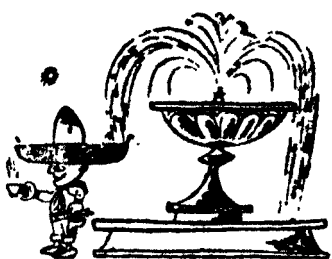
बाटू साहब का मुग़ालता

बाटू साहब की जिन्दगी का शायद सबसे बड़ा मुगाल्ता (भ्रम !) यही रहा कि वह भला करने के लिए पैदा हुए हैं। चाहे उनका समय बरबाद हो जाय या उनका समय चौपट हो जाय, लेकिन वह भला करके रहते हैं ! ! नौबत यहाँ तक है कि लोग चाहे पसन्द करें या न करें लेकिन वह भला करने पर कमर कसे रहते हैं। उनकी सलाह, उनका साथ, उनका अपनापन सबके लिए समानभाव से रहता है, चाहे आप चाहें या न चाहें ! थोड़ी भी झंझट आपको लगी कि बाटू साहब का चेहरा आपके दरवाजे से झाँका ! बाटू साहब को जहाँ पता लगा कि उनके अमुक परिचित को नौकर की तलाश है, या वे मकान बदल रहे हैं, या वह कहीं बाहर जाने लिए टिकट खरीदवाना चाहते हैं, या सीट बुक कराना चाहते हैं, या उनके लड़के या लड़की की शादी है और उन्हें तमाम साड़ियाँ या जेवर खरीदना है, या उन्हें घर से लाश हटवानी है, या बहुत दिन से म्युनिसिपैलिटी में पड़ी उनकी

अर्जी पर कोई कार्रवाई नहीं की गई, या वह अपने किसी अफसर को दावत देना चाहते हैं तो बाटू साहब फौरन उनकी सहायता करना अपना धर्म समझते हैं।

अभी पिछली बार बरसात में जब वह मुझे क्लब में मिले तो मैंने देखा कि वह बरसाती चढ़ा रहे हैं और उनका चेहरा ऐसा खुश दीख पड़ रहा था कि मैं समझ गया कि हो न हो वह इस वक्त भलाई करने के लिए ही आ रहे हैं।

"आइए न, थोड़ी देर ब्रिज रहे," मैंने कहा (क्योंकि इसके कहने में कोई भय नहीं था!)

"क्या बताऊँ! काश कि मैं खेल पाता! काश मेरे पास समय होता! सच मानिए मैं जानता हूँ कि मेरे ताश खेलने से आपको खुशी होती, लेकिन मैं क्या करूँ मजबूर हूँ न! मैं तो बाहर जा रहा हूँ।" वे बोले!

"कहाँ जा रहे हैं आप?" मैंने दबी जबान पूछा। (क्योंकि उनके चेहरे से लग रहा था कि मैं यह उनसे जरूर पूछूँ!)

"मैं?....मैं मिस्टर शुक्ला के घर जा रहा हूँ। जानते हैं न आप उनको! नहीं...न जानते होंगे। अभी दस दिन तो हुए हैं इस शहर में आए!........अरे क्या वही जो कटरे की मोड़ पर रहते हैं!" वे कहते रहे।

"लेकिन वह हिस्सा तो करीब-करीब दो ढाई मील होगा यहाँ से!"

हाँ.......हाँ.......होगा तो ऐसे ही....।"

"तो इस वक्त पानी बरसते में, और वह भी आठ-नौ बजे रात को? कहाँ जाइएगा बेकार..." मैंने फिर कहा।

वे बोले: "अजी साहब, आप भी क्या बात करते हैं। यह पानी वानी तो हेल्थ के लिए बड़ी फायदेमन्द चीजें होती हैं। और जहाँ तक मकान पाने का सवाल है तहाँ तक तो मेरा बड़ा अच्छा कायदा

है। मैं हर दरवाजे पर खटखटाता चला जाता हूँ और जब तक मेरा वांछित मकान नहीं मिलता तब तक बराबर खटखटाता चला जाता हूँ।"

"अब तो काफी लेट हो गया है।" मैंने कहा।

"हूँ....आप भी अजीब आदमी हैं। मिस्टर शुक्ला और मिसेज शुक्ला पिछले महीने ही शादी करके आए हैं, तभी उनका तबादला यहाँ का हो गया! उनके पास कोई आदमी बोलने बतलाने वाला भी नहीं है और आप कहते हैं कि लेट हो गया है!...मुझे तो अभी-अभी पता चला है, नहीं तो मैं तो उनके पास बहुत पहिले ही पहुँच गया होता!"...इतना कह कर वह अपनी बरसाती सम्हालते हुए बाहर निकल गए।

दूसरे दिन शाम को क्लब में बाटू साहब फिर मिले।

"कहिए कल मि० शुक्ला मिले थे!"

बाटू साहब बड़े उत्साह से कह रहे थे: "जी हाँ, जी हाँ, मिलते कैसे नहीं। मैंने बड़ी कोशिश की थी! कम से कम बीस घरों को खट-खटाने के बाद उनका घर मेरे हाथ लगा। बड़ा अँधेरा और कीचड़ था मगर मैं हर दरवाजे पर खटखटाता था और जब कोई ऊपर से पूछता तो मैं मि० शुक्ला का नाम लेकर पूछता। और जब वह इनकार कर देते तो मैं चटपट उनको कह देता कि 'जाइए जाइए फिर सो जाइए। नीचे आने का कष्ट मत उठाइए!'

"लेकिन जनाब! अन्त में वह घर पाकर ही मैंने दम लिया। मकान में अँधेरा था। फिर भी मेरे खटखटाने पर शुक्ला साहब ने खिड़की के बाहर अपना सिर निकाला। मैंने कहा कि 'अजी मैं बाटू हूँ'। वे बोले कि उन्हें दुख है कि वह सोने जा रहे हैं। मैंने कहा आप तनिक भी चिन्ता न करें। दरवाजे की कुंडी खोल दीजिए और उस बीच आप अपने कपड़े पहिन कर आ जाइये। मैं तब तक बैठक में बैठा हूँ।"

बाट्टू साहब कह रहे थे : "जरा सोचिए कि बेचारे दोनों मियाँ बीवी इतनी जल्दी सोने के लिए चले गए ! क्यों...सिर्फ...बोरियत की वजह से....ग्रालस्य के कारण ! ! मैं तो बहुत खुश हुग्रा कि मैं ग्रा गया, चलो ग्रच्छा हुग्रा । मैंने सोचा कि इन दोनों को खुश करना ही चाहिए !

"हम लोग वहीं बैठे रहे । मिसेज शुक्ला ने कहा कि ग्रापके लिए चाय बना लाऊँ ।' लेकिन मैंने कहा कि तुम दोनों बच्चे हो, क्यों तकलीफ करते हो !' मैं खुद चाय बनाने के लिए उठ गया । उन्होंने बहुत इन्कार किया लेकिन मैंने उतना ही इसरार किया ।....चौके में कम से कम मुझे दस बारह डिब्बे उलटने पड़े तब कहीं चाय कि पत्ती मिली । खैर चाय तो मैंने बना ही डाली । बात यह है कि चाय तो वैसे भी मैं बहुत ग्रच्छी बनाता हूँ । मैंने भी पिया उन लोगों को भी पिलाया ।...ग्रब ग्राप यह समझिए कि ग्राधी रात तक मैं उन लोगों का मन बहलाता रहा । पहिले तो वह लोग बहुत सुस्त रहे ग्रौर सारी बातचीत शुरू से ग्राखीर तक मुझे ही करनी पड़ी ! थोड़ी देर बाद मिसेज शुक्ला ने कहा कि 'ग्राधी रात से ज्यादा हो गई होगी ।' मैं समझता हूँ कि लोग बहुत प्रसन्न हो रहे थे कि उनकी सारी रात कितने ग्रानन्द से कटी जा रही थी ।

"एक बज गया था । ग्रौर मैं ज्यादा देर कहीं रुकना नापसन्द करता हूँ । मैंने कहा कि मैं कल सामान वामान ठीक करने सुबह ग्रा जाऊँगा । उन बेचारों ने तो बहुत इन्कार किया, लेकिन मैंने बहुत इसरार किया !"

दूसरे दिन बाट्टू साहब ने उनके घर जाकर सब सामान ठीक किया ग्रौर कहते हैं कि कई तस्वीरें ठीक करने में दीवार से गिर पड़ी थीं ।

कुछ दिनों बाद बाट्टू साहब मिले थे ग्रौर उन्होंने बताया कि वह

मि० शुक्ला का फर्नीचर बदलवाना चाहते हैं, मगर अभी जरा कहना ठीक नहीं समझते !

फिर काफी दिनों तक बाटू साहब के दर्शन नहीं हुए। थोड़े दिन बाद बाटू साहब ने बताया कि उन लोगों का मकान काफी दूर है, इसलिए वह उन्हें किसी छोटे मकान में लेकिन शहर के एकदम अन्दर ले आ रहे हैं। और फिर बाटू साहब उनके लिए हारमोनियम और एक तानपूरा खरीदने में बहुत व्यस्त रहे !

एक दिन बाटू साहब ने पूछा : "आपने शुक्ला जी के बारे में सुना ?" लग रहा था कि वे बहुत चिन्तित थे।

"नहीं तो", मैंने कहा।

"वह तो बीमार पड़ गए हैं ! बेचारे ! ! तीन दिन से बीमार थे लेकिन मुझे नहीं कहलाया ! बस वही सनक—अकेले मुसीबत झेलने को तैयार थे ? मैं तो अभी जा रहा हूँ।"

उस दिन से रोज बरोज मैं उनसे मिस्टर शुक्ला और उनकी श्रीमती के बारे में सुनता रहा।

"मैं तो रोज उनके साथ बैठता हूँ। बेचारा लड़का ! कल तो हालत बड़ी खराब हो गई थी—बिलकुल अंड-बंड बक रहा था !—बिलकुल सन्निपात वाली हालत ! मैं तो बगल के कमरे से सुन रहा था—वही एक आवाज़—लगता था जैसे कोई भूत-प्रेत लग गया हो—वही आवाज :—'क्या वह बुड्ढा अब भी नहीं गया !' बराबर यही आवाज !! मैं कमरे के अन्दर गया। जाकर बहुत दिलासा दिया कि वहाँ कोई नहीं है ! वहाँ तो कोई नहीं था सिर्फ मैं था ! मिसेज शुक्ला ने तो कहा भी कि 'बाटू साहब, आप थक गए होंगे, बाहर जाकर आराम करें !' लेकिन मैंने कहा कि 'अजी मेरा थकना क्या। मैं तो बीमार का दिल बहलाना चाहता हूँ।'

और निस्संदेह बाटू साहब की निरन्तर सेवा से वह एकदम चंगा हो गया !

कुछ हफ्ते बाद बाट्र साहब ने मुझसे कहा : "जी हाँ! अब वह बिलकुल ठीक है। लेकिन बीमारी ने उनके अंजर-पंजर ढीले कर दिए। तब से एक शाम को भी मैं कहीं किसी से मिलने नहीं जा सका! लेकिन साहब उन लोगों ने भी मेरी कद्र करने में कोई चूक नहीं की! सुनिए! वह बेचारी मिसेज शुक्ला बराबर कहती हैं कि इस बीमारी में आप पर बड़ी तकलीफ रही अब आप आराम करने के लिए कहीं दूर चले जाइए। वह तो मुझसे कह रही थीं कि आप कन्या-कुमारी में कुछ दिन जाकर रह आइए! मगर वह तो मैंने कहा कि 'भई मुझे तो गरमी के कारण दक्खिन जाना पसन्द ही नहीं है!" इस पर वह बोली कि "तो आप नैनीताल अल्मोड़ा चले जाइए। फिर आप चाहे कंचनजंगा और मानसरोवर तक चले जाइएगा। हर साल यात्री वहाँ आते जाते रहते हैं। अगले साल तक लौट आइएगा!"

मैंने कहा : "बड़ी भारी बात कही!"

"जी हाँ, जी हाँ! यह भी भला कोई कहने की बात है। मेरे पास तो भाईजान कुछ भी नहीं है! जो कुछ है वह यही दोस्त हैं। इस शहर में सिर्फ दोस्तों के ही कारण तो पड़ा हुआ हूँ। क्या कहूँ, हर एक जब तक मेरी सलाह या राय नहीं पा लेता है तब तक संतोष की साँसें नहीं लेता, हालाँकि सभी शिष्टतावश मुझे तकलीफ नहीं देना चाहते!"

बाट्र साहब भावुक होते जा रहे थे! "अब यही शुक्ला को ही देखो, आते ही क्लब में पूछता है कि बाट्र साहब आए कि नहीं!" और उनकी आँखें कुछ पानी की चमक से दीप्त उठीं।

बाट्र साहब मुझे छोड़ कर हटे ही होंगे कि एक अजनबी ने क्लब के पोर्टिको में प्रवेश किया। घबराया सा, चारों तरफ चौकन्नी निगाह से देखते हुए उसने दरबान से पूछा : "बाट्र साहब भीतर हैं क्या?"

दरबान ने कहा : "जी हाँ वे भीतर गए हैं!"

आगन्तुक फौरन पीछे लौटा और फाटक की तरफ तेजी से बढ़ने लगा।

"कौन है यह ?" मैंने दरबान से पूछा।

"साहब, यह नए सज्जन हैं। इनको सब शुक्ला जी कहते हैं।" दरबान ने मुझे बताया!

(लीकाक की कहानी के आधार पर)
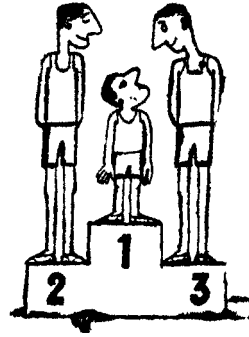
बाल मनोविज्ञान बनाम धीरज

कल जब मैं बाग़ में खुरपी लिये हुए कुछ पौधों के आस-पास की ज़मीन की निराई कर रहा था, उसी समय मेरे मित्र की पत्नी अपने बच्चे के साथ मेरे घर आईं। मेरा घर बाज़ार के बिल्कुल पास पड़ता है इसलिए हमेशा अपने मित्रों तथा उनकी पत्नियों के स्वागत के लिए मैं तैयार रहता हूँ। बाज़ार से जो एक बट्टी साबुन भी लेने के लिए आया वह सोचता है कि चलो वर्मा जी को भी 'ओबलाइज' करता चलूँ और वर्मा जी ने शराफ़त की तो एक गिलास पानी और पान भी खाते चलेंगे। इसलिए जब सुबह-सुबह ही मैंने अपने मित्र की पत्नी को अपने बच्चे के साथ देखा तो न तो मुझे ताज्जुब और न खास परेशानी ही हुई!

'लो चाचा जी मिल गए। उन्हीं से तो तुम मिलना चाहते थे! जाओ उनके पास!' मित्र की श्रीमती बोलीं।

पाँच बसंत देखे हुए वह बालक माँ की साड़ी पकड़ कर खड़ा रहा।

'जाओ न! देखो चाचा जी बाग में क्या लगा रहे हैं। वहाँ जाकर माँग लो तुम्हें अमरूद और नीबू तोड़ देंगे।'

अब मेरी बारी थी।

'आओ आओ बेटे!' आओ न! आओ तुम्हें अमरूद चाहिए? आओ दूँ!'

पर वह लड़का माँ की साड़ी पकड़े ज्यों का त्यों खड़ा रहा। आखिरकार माँ को भी सीढ़ी से उतर कर बाग में आना पड़ा। अपने बाग से मैंने उस लड़के को एक अमरूद तोड़ कर दिया। उसने अमरूद ले लिया। तब श्रीमती फिर बोलीं—

'अब तुम यहीं चाचा जी के पास रहो। मैं अभी सामान लेकर आती हूँ!....वर्मा भाई साहब, इसे यहीं छोड़े जा रही हूँ। ज़रा बाज़ार से कुछ सामान लाना है। इसे वहाँ लादे-लादे चलूँगी। आने के लिए बहुत ज़िद कर रहा था तो मैंने सोचा कि आपके घर छोड़ कर चली जाऊँगी!'

मैं बोला—

'हाँ हाँ....कोई बात नहीं...पर अन्दर जाकर मिसेज़ वर्मा से तो मिल आइए!'

वह जल्दी में थीं। बोलीं—

'अभी लौट कर आती हूँ तो मिलूँगी। नहीं तो बड़ी देर लग जायगी!'

कह कर अपनी साड़ी का छोर उस लड़के के हाथ से झटके से छुड़ाया और अपना खूबसूरत थैला हाथ में लटकाये हुए फाटक के बाहर हो गईं! लड़का गुस्से में खड़ा था। मैंने खुरपी रख दी और उससे बात करने के लिए एक मोढ़ा खींच कर वहीं बैठ गया—

'तुम्हारा नाम क्या है बेटे?'

'मेरा ? मेरा नाम है सुरेन्द्र प्रताप नारायण सिंह !'

'ठीक ही होगा।' मैंने अपने मन में सोचा, 'जिसका बाप राघवेन्द्र प्रताप नारायण सिंह हो, वह क्या इतना बड़ा नाम भी नहीं अपने बेटे को देगा ?'

'अच्छा घर का नाम क्या है ?'

'सुरेन्द्र।'

'पढ़ते हो ?'

'हाँ !'

'कहाँ ?'

'मिशन स्कूल में।'

लड़का फिर चुप हो गया। मिशन स्कूल अमरीकन पादरियों का स्कूल था। मैंने बातचीत जारी रखने के लिए उससे फिर कहा—

'जार्ज वाशिंगटन का नाम सुना है ?'

'नहीं।...आप बताइए !'

'सुनो वह अपने देश के राष्ट्रपिता थे। जैसे अपने भारत देश के गाँधी जी !'

'किसके देश के ? अपने गाँधी के देश के ?'

'नहीं अपने देश के। अमरीका के !'

'अपने देश में किसके पिता थे ?'

'अमरीका देश के राष्ट्रपिता थे ! उन्होंने अपना रक्त बहाकर उस देश की आज़ादी हासिल की !' मैंने कहा।

'किसका रक्त बहा कर ?' उसने पूछा।

बच्चों से बात करने की भी कला होती है जो हर आदमी नहीं कर सकता। बहुत से लोग सुरेन्द्र की इतनी जिज्ञासाओं को एक साथ सुन कर एकदम क्रोध से उबलने लगते। पर मैंने ऐसा नहीं किया। मैं जानता था कि बच्चे को अगर कहानी में फँसा लिया जाय तो फिर वह कान-आँख जोड़ कर कहानी के पीछे दौड़ता है। ऐसा बाल-

मनोविज्ञान के जानकारों ने कह रक्खा है। मैंने अपने चेहरे पर मुस्कान लाने की चेष्टा की। ठीक वही मुस्कान जो अपने फ़ोटो खिंचाने के पहिले अपने चेहरे पर जबर्दस्ती लाने की कोशिश की होगी—मुँह चियार कर एक हल्की-सी हँसी की रेखा निकालने की कोशिश—जिसके चारों ओर मातमपुर्सी का घुप्प घिरा रहता है! और मुस्करा कर मैं कहानी कहने लगा—

'अरे अपना रक्त बहाकर! और किसका?....अच्छा सुनो....एक दिन ऐसा हुआ कि जार्ज के बाप ने....

'जार्ज? जार्ज कौन थे?'

'जार्ज वाशिंगटन, भाई! उस वक्त वह तुम्हारे बराबर छोटे-से थे। तो एक दिन उनके बाप ने....

'किसके बाप ने?' लड़के को कहानी में मज़ा आने लगा था, ऐसा उसके मुँह से लग रहा था।

'जार्ज वाशिंगटन के बाप ने। जिनकी कहानी तुम्हें बता रहा हूँ। एक दिन उनके बाप ने एक छोटी-सी टेंगारी (कुल्हाड़ी) उन्हें दी और....'

'किसने टेंगारी दी?' लड़के के मुँह पर कहानी समझने की बात स्पष्ट हो रही थी! उसके इस तरह सवाल पूछने पर बहुत-से आदमी ताव में आ सकते हैं और मार बैठ सकते हैं। पर मैं तो बाल-मनोविज्ञान जानता था। मैं शांत और स्थिरचित्त बना रहा। कहानी आगे बढ़ाने लगा—

'उनके बाप ने। और कहा....'

'किनके बाप ने कहा?'

'जार्ज वाशिंगटन के बाप ने कहा!' मैं बोला।

'ओह! हाँ हाँ। तब क्या हुआ?'

मैंने छूटती हुई डोर फिर पकड़ ली।

'हाँ तो तब उनके बाप ने कहा—'

'किससे कहा ?'

'जार्ज वशिंगटन से भाई !'

'अच्छा अच्छा....हाँ तो ?'

आप सोच नहीं सकते कि मैं कितना स्थिर और शांत चित्त होकर बैठा हुआ था। कहानी को फिर उसी जगह से उठाने की कोशिश करता जहाँ पर वह लड़का उसे टोक देता था ! मैं जानता था कि वह कहानी का अंत सुनने के लिए ज़रूर ही व्याकुल हो रहा होगा। क़िस्सा फिर आगे चला—

'तो उन्होंने कहा कि—'

'जार्ज ने अपने बाप से कहा न ?'

'नहीं बाप ने अपने बेटे जार्ज से कहा....'

'ओह ! हाँ हाँ ठीक है !'

'उन्होंने कहा कि देखो इस टँगारी को बहुत सावधानी से चलाना और बहुत होशियार रहना कि...

'कौन होशियार रहे ?'

'जार्ज भाई ! और कौन ?'

'हाँ जार्ज होशियार रहे....'

'हाँ ! और होशियार रहना कि उससे कहीं अपना हाथ-पाँव न काट लेना। उसे हौज़ में न गिरा देना और न रात भर यहीं घास पर छोड़ कर चले जाना ! सब खर-पतवार छाँट देना।' जार्ज जहाँ तक पहुँच सकता था उसने सब कुछ साफ़ कर डाला। अंत में वह अपने पिता के लगाये हुए एक सेब के पेड़ के पास पहुँचा और उसे रद्दी पौधा समझ कर उसे काट डाला। और...."

'किसने काट डाला ?'

जार्ज ने काट डाला। समझे !'

'अच्छा।'

'जब जार्ज का बाप घर पर आया तो वह सबसे पहिले उसी को देखने के लिए पहुँचा।'

'किसको? टेंगारी को?'

'नहीं भाई। सेब के पेड़ को? और उसने कहा कि मेरे सेब के पेड़ को किसने काट डाला है?'

'किसके सेब?'

'जार्ज के बाप के सेब के पेड़!! सबने कहा कि कोई उसके बारे में कुछ नहीं जानता!'

'किसके बारे में?'

'उसी सेब के पेड़ के बारे में!'

'अच्छा। हूँ!'

'तब तक जार्ज घूम कर आ गया। उसने....'

'जार्ज कहाँ घूमने गया था?'

'अरे कहीं गया होगा! उसने लौटकर देखा कि सब लोग उसी चीज़ के बारे में बात कर रहे हैं तो....'

'कौन बात कर रहे हैं?'

'उसके बाप और घर के सब आदमी!'

'काहे के बारे में बात कर रहे थे!'

'उसी सेब के पेड़ के बारे में!'

'कौन सेब का पेड़?'

'वही जिसे जार्ज ने काट डाला था। वह उसके बाप का बहुत ही प्रिय पेड़ था न!'

'जार्ज कौन? वही....'

'हाँ वही वाशिंगटन। तो वह खड़ा हो गया और उसने अपने बाप से कहा कि मैं झूठ नहीं बोलूँगा। मुझसे....'

'बाप नहीं बोलेगा?'

'अरे नहीं जी! जार्ज झूठ नहीं बोलेगा? अपने बाप से।'

'अच्छा जार्ज नहीं झूठ बोलेगा ! हाँ तो....'

'उसने कहा कि पिता जी मैंने ही ग़ल्ती से आपका सेब का पेड़ा काट डाला है । मैंने उसे....'

'उसके बाप ने उसे काट डाला था ?'

'नहीं ।' मेरा स्वर सहसा कुछ तेज़ हो गया था । पर सहसा बाल मनोविज्ञान मेरे गले में आकर अटक गया और मैंने फिर अपनी आवाज़ को नर्म बना लिया । उसने कहा कि उसने गल्ती से उसका पेड़ काट डाला है !'

'अच्छा जार्ज का पेड़ ?'

'नहीं । उसके बाप का । तो जार्ज ने कहा कि पिता जी मैं झूठ नहीं बोलूँगा । मेरी टँगारी से वह पेड़ गल्ती से ही कट गया । उसके बाप ने कहा कि बेटा मैं ऐसे हजार पेड़ काट डालना पसन्द करूँगा लेकिन तेरा एक झूठ बोलना नहीं !'

'जार्ज ने यह सब कहा ?'

'नहीं उसके बाप ने ?'

'अच्छा । उसने यह क्यों कहा कि वह एक हज़ार पेड़ काट डालेगा ?'

'मतलब वह एक हज़ार पेड़ के बजाय एक हज़ार झूठ को ज्यादा समझता था !'

'अच्छा तो जार्ज को उसने यह कहा था । तब क्या हुआ ?'

अगर ठीक इसी समय मेरे मित्र की पत्नी बाज़ार से अपना सामान खरीद कर वापस न आ गई होतीं तो बाल-मनोविज्ञान के बड़े-बड़े शास्त्री भी मेरे धर्म की रक्षा न कर पाते ! मित्र की पत्नी उसी फोटो-ग्राफरी-मुस्कान के साथ बोलीं—

'खिल रहे हो चाचा जी के साथ ?....वर्मा जी आपको इसने बोर तो नहीं किया !'

और मैंने कहा—

'नहीं नहीं ! इसके साथ तो बड़ा अच्छा टाइम बीता। बड़ा इन्-टेलीजेंट लड़का मालूम पड़ता है !'

हम तीनों हँस कर घर के भीतर आ गए। ऊपर के कमरे में बैठा कर मेरी श्रीमती ने उन को चाय पिलाई। चाय पीकर वे हमसे बिदा लेकर चल दीं। सीढ़ी से उतरते ही उतरते श्री सुरेन्द्र प्रताप नारायण सिंह ने अपनी माँ की साड़ी का छोर पकड़ कर पूरा हाल कह सुनाया कि किस तरह चाचा जी ने एक लड़के की कहानी सुनाई जिसके बाप का नाम जार्ज था। उसने उससे कहा कि वह एक सेब का पेड़ काट लाए तो उसने कहा कि वह हज़ार बार झूठ बोल सकता है पर एक पेड़ नहीं काटेगा।

बच्चों को मैं भी बहुत प्यार करता हूँ। पर बाल मनोविज्ञान के आधार पर मैं चल सकता हूँ, इसका मुझे विश्वास नहीं होता !

—एक अज्ञात लेखक की कहानी के आधार पर
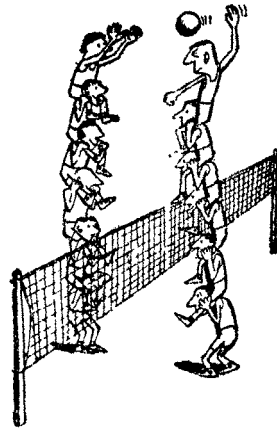
दो सौ बरस कैसे जिएँ ?

बीस साल हुए एक आदमी को मैं जानता था जिसका नाम जगनू था। जगनू को तन्दुरुस्ती बनाने की आदत थी!

वह रोज सुबह ठंडे पानी में एक डुबकी लगाता था। उसका कहना था कि उससे बदन के सूराख खुल जाते हैं। उसके बाद वह गरम पानी से स्नान करता था। उसका कहना था कि उससे सूराख बन्द हो जाते हैं। धीरे-धीरे उसको ऐसा हो गया था कि वह जब भी चाहता अपनी मर्जी के माफिक सूराख खोल-मूँद सकता था!

कपड़े पहिनने के पहिले जगनू महोदय खिड़की के सामने खड़े होकर आध घंटे तक साँस लेते थे। उनका कहना था कि इससे उनके फेफड़े बढ़ते थे! यूँ तो फेफड़े बढ़ाने के लिये वह किसी भी जूते के फर्मे पर उसे चढ़ा कर चाहे बढ़ा सकते थे लेकिन इस तरह खिड़की के सामने खड़े होकर फेफड़े बढ़ाने में उनका कुछ भी नहीं खर्च होता।

इसके बाद जाँघिया और बनियाइन पहिन कर जगनू महाशय कुत्तों की तरह अपने बदन को आगे-पीछे खींचते थे ! इसे वे सैंडो कसरत कहते थे । यूँ उनको कुत्ते का काम कहीं भी मिल सकता था लेकिन वह अपना सारा समय उसी में लगा देते थे। दफ्तर में भी फुर्सत के समय जमीन पर पट लेटकर इस बात को देखने की कोशिश करते थे कि वह सिर के बल उठा सकते हैं कि नहीं ! अगर न कर पाते तो कोई और तरीका अपनाते ! जब तक वह इस तरह उठ न जाते, चैन की साँस न लेते ! और फिर सारे दोपहर की खाने की छुट्टी अपने पेट के बल लेटे वह खुशी से काट देते !

यह सब उन्हें बेहद पसन्द था।

आधी रात वह अपने कमरे में लटक कर काट देते थे। उनका कहना था कि इससे उनका दिमाग साफ रहता है। जब उनका दिमाग बिल्कुल साफ हो जाता था तब वे सोने के लिये चले जाते। जैसे ही वे जागते थे वैसे ही वे अपने दिमाग़ की सफाई का कार्यक्रम फिर शुरू कर देते थे !

जगनू महाशय मर गये। वे कसरत के इस क्षेत्र में अगुवा थे लेकिन उन्होंने इस कदर डम्बल किए कि आखिर उनकी मौत हो गई। इस तथ्य को जानकर भी बहुत से नौजवान उनका अनुसरण करने में नहीं चूकेंगे !

उनको स्वास्थ्य की बीमारी रहती है !

वे अपने को एक तमाशा बनाने में विश्वास करते हैं।

वे सदा असम्भव समय पर उठते हैं। गंदे कपड़े पहिने ही पहिने जलपान करने के पहिले चार मील की सुअर दमहा दौड़ लगा चुकते हैं ! वे नंगे पाँव ओस लगाने के लिये चक्कर काटते हैं ! ओज़ोन और पेप्सीन के लिए परेशान घूमते हैं। मांस इसलिये नहीं खायेंगे क्योंकि उसमें नाइट्रोजन अधिक रहता है। फल इसलिये नहीं खाते कि उसमें नाइट्रोजन बिल्कुल नहीं होता। टोंटी से पाइप का पानी

नही पियेंगे ! शीशे के गिलास में दूध नहीं पियेंगे। डरते हैं कहीं किसी तरह से अल्कोहल पेट में न चला जाय ! जी हाँ जनाब डरते हैं !!—'कायर' !!

इतना सब तूमार रचने के बाद एक छोटी सी बीमारी में अल्ला-अल्ला खैरसल्ला करके चल बसते हैं—ठीक उसी तरह जैसे कोई भी दूसरा उतनी ही देर में मर जायगा !

इस तरह के आदमी कभी ज्यादा उम्र तक जी ही नहीं सकते हैं। वे अपने लिये बड़ा ग़लत रास्ता चुनते हैं।

सुनिये !!

क्या आप सचमुच धराऊ बुढ्ढांची बनना चाहते हैं जिसके सामने नाती पोतों के नाती-पोते खेलते-खाते दिखाई पड़े और आप अपने बचपन के संस्मरणों से पड़ोसियों का अक्सर वक्त बरबाद करतें रहें ?

तब यह सब हंगामा बन्द कीजिये। इस प्रोग्राम को काट दीजिये ! सुबह एक शरीफ आदमी की तरह ठीक वक्त पर उठा कीजिये ! ठीक उठने का टाइम वही है जब आपको मजबूरन उठना ही पड़े !! समझे ! अगर आपका दफ्तर ग्यारह बजे से चालू होता है तो आपका ठीक टाइम उठने का होगा साढ़े दस बजे। ओस के लिये बहुत शौक है तो थर्मस में इकट्ठा कर के रख लीजिये। अगर काम पर सुबह सात बजे ही जाना पड़ जाये तो दस मिनट पहिले उठकर काम पर चले जाइये—लेकिन भगवान के लिये झूठ मत बोलिये कि आपको उस समय उठना बहुत अच्छा लगता है। यह झूठ है !! आपको इतने सुबह उठना हरगिज अच्छा नहीं लग सकता।

और वह ठंडे गर्म पानी से नहाने का तमाशा भी खत्म कीजिये। आप अपने लड़कपन का ख्याल कीजिये ! हफ्ते में कितनी बार आपके बदन पर पानी पड़ता था ! यह न भूल जाइये कि आपका तन तो वही

है ! नहाना भी अगर कभी पड़ ही जाये तो चुपचाप गरम पानी से नहाने का प्रोग्राम रखिये ! बस काफी है !

अब कीड़ों और कीटाणुओं के सवाल पर आइये। उनसे बचने की कोशिश मत कीजिये। बस काफी है। अगर कोई आपके ही कमरे में आकर उड़ने लगे तो तौलिये से या अपने हैट से उसे स्वर्गधाम पहुँचा दीजिये। बस किस्सा पाक हो गया। एक बार आप इसके आदी हो गये तो आगे की झंझट अपने आप खत्म हो जायेगी !

बात यह है कि अगर आप कीटाणुओं से एक बार भी भेंट करेंगे तो आपको पता लगेगा कि उनसे डरने की कोई भी जरूरत नहीं है ! उससे बात कीजिये—कहिये 'लेट जाओ !' एक बार मुझे याद है कि एक कीटाणु 'चुनचुन' से भेंट हुई थी ! वह बराबर आकर मेरे पैर के पाँव के पास पड़ा रहता था ! मैं दिन भर काम किया करता था ! उससे अच्छा साथी तो अब तक मिला नहीं। जब वह मोटर से कुचल गया तो उसे मैंने बाग में दफना दिया था !

(मैं मानता हूँ कि जो कुछ मैंने कहा है वह अतिशयोक्ति हो सकती है ! मुझे ठीक याद नहीं है कि उसका असली नाम चुनचुन ही था ! हो सकता है उसका नाम झुनझुन रहा हो !)

यह आप समझ लीजिये कि आजकल के साइंस वालों को यह वहम हो गया है कि हैजा, टाइफाइड और डिप्थीरिया कीटाणुओं की वजह से होता है ! क्या मजाक है !! अरे भाई कॉलरा तो तब होता है जब पेट में सख्त दर्द होता है। जब गले में खराश हो जाती है !!

अब खाने के सवाल पर आइए !

जो मन में आये खाइये ! खूब खाइए ! जी हाँ भरपेट खाइए। तब तक खाइये जब तक आपका मन चारपाई पर लेटने के लिये नहीं होता। सब चीजे आप उतनी खाइये जिसके आगे आप नहीं खा सकते। खाने या न खाने का सिर्फ एक इम्तहान है कि आपकी टेंट में पैसा है या नहीं ! पैसा हो तो खाइये न हो तो मत खाइये !

और सुनिये इसके चक्कर में कभी मत पड़िये कि किस खाने में कितना स्टार्च है। कितना नाइट्रोजन है कितना एल्यूमीन है ? अगर आप इतने बेवकूफ हैं कि इसके बिना आपका काम नहीं चल सकता है तो किसी लांड्री में चले जाइये जितनी तबियत चाहे स्टार्च लेकर फाँक लीजिये ! उसके ऊपर से गोंद का एक गिलास पी लीजिये। तबियत फिर न माने तो १ चम्मच सीमेंट का भी खा लीजिये। एकदक पुष्टई आ जायेगी। नाइट्रोजन ही आप चाहते हैं तो किसी भी डाक्टर के दूकान में पहुँच जाइये ! सोडा लेकर खूब पीजिये ! बस एक ही दवा कीजिये कि इन चीजों को आप मेहरबानी करके खाने में मिलाने का कष्ट न कीजिये। बात यह है कि हर शरीफ आदमी के घर में चौके में चीजे धोई और साफ की जाती हैं ! इसलिये आप कृपया वहाँ इन सब चीजों को न खोजिये।

एक शब्द स्वच्छ हवा और कसरत के बारे में भी कहना चाहूँगा। इसके बहुत चक्कर में मत पड़िये। अपने कमरे में काफी हवा भरकर फिर बन्द कर दीजिये। जाड़े के दिनों में बहुत दिनों तक कमरे में साफ हवा रहेगी ! हर समय आप अपने अपने फेफड़ों को फुलाया-पचकाया मत कीजिये। उन्हें भी आराम करने का मौका दीजिये। कसरत करना ही है तो कीजिये लेकिन वक्त पर बन्द भी कर दीजिये। लेकिन अगर आप टिकट खरीद कर क्रिकेट का खेल, या सरकस या घुड़दौड़ मज़े में किसी छाँह में बैठकर सिगरेट पीते हुये देख सकते हैं—तो सच बताइये फिर और आपको क्या चाहिए ?

—स्टी० लीकाक

एक आदर्श परिसंवाद

जिसमें यह दिखाया गया कि किस तरह आपके ड्राइंगरूम में बैठ कर ताश के खेल दिखाने वाले जादूगर की बीमारी हमेशा के लिए दूर कर दी गई है !

ड्राइंग रूम का यह मदारी हाथ में ताश की गड्डी चतुराई से पकड़ कर कहेगा—

'कभी ताश का जादू देखा है बाबू ! आइए दिखाऊँ । ज़रा एक एक पत्ता तो निकालिए !'

'रहने दीजिए । मैं नहीं देखना चाहता ।'

'नहीं-नहीं । आप एक पत्ता निकाल तो लीजिए । देखिए मैं बता दूँगा कि आपने कौन सा पत्ता निकाला है ?'

'आप बताएँगे किसको ?'

'नहीं-नहीं आप समझे नहीं । मेरा मतलब है कि मैं समझ जाऊँगा कि आप का क्या पत्ता है ! चलिए बढ़िए-निकालए ।'

'जो चाहूँ निकालूँ ?'

'जी हाँ'

'चाहे जिस रंग का ?'

'जी हाँ-जी हाँ !'

'चाहे जिस बाज़ी का ?'

'हाँ-हाँ भाई ! निकालिए तो !'

'अच्छा लाइए देखूँ तो। ज़रा हुकुम का इक्का निकालूँगा।'

'राम कहो बाबू ! आप को इस गड्डी में से एक पत्ता निकालना है !'

'ओ ! तो मुझे गड्डी से निकालना है ! लाइए तो गड्डी !—अच्छा जनाब निकाल लिया !'

'आपने एक पत्ता निकाल लिया ना ?'

'जी हाँ पान की तिग्गी है ! आपने पता लगा लिया ?'

'धत्तेरे की। मुझे न बताइए ! आप तो सब गुड़गोबर कर देते हैं ! लीजिए फिर से निकालिए ! एक पत्ता लीजिए !'

'अच्छा। ले लिया।'

'बस-बस गड्डी में रख दीजिए। (गड्डी फेंटने की आवाज़ और सड़ाक् से एक पत्ता निकलता है।) यही है ना ?'

'मुझे पता नहीं ! ठीक से देख नहीं पाया था !'

'देख नहीं पाया था ? क्या आदमी हैं आप भी ! आप ठीक से देख लीजिए तब रखिए।'

'अच्छा तो आप चाहते हैं कि मैं ठीक सामने से उस पत्ते को देखूँ ?'

'और क्या ? वाह जी ! अच्छा लीजिए फिर से एक पत्ता निकालिए !'

'अच्छा निकाल लिया। चलिए !'

(गड्डी फेंटने की आवाज़ और फिर फरफराहट)

'क्यों जनाब क्या आपने गड्डी में वह पत्ता वापस रख दिया था?'

'क्यों? नहीं तो! मैं तो लिए यह लिए हुए हूँ।'

'भगवान कसम! हत्तेरे की! एक पत्ता निकालिए—सिर्फ़ एक पत्ता देखिए कि क्या है—देखने के बाद गड्डी में वापस रख दीजिए! समझ गए आप कि नहीं?'

'ओ ठीक है, ठीक है!! समझ में नहीं आता कि आप इसे करेंगे कैसे?....बड़े चतुर हैं आप साहब!'

(गड्डी फेंटने की आवाज़ और फरफराहट)

'यह लीजिए! यही आपका पत्ता है! है कि नहीं जनाब! (समझिए कि अब खतरनाक घड़ी आ गई!)

'जी नहीं। यह मेरा पत्ता नहीं है!'

(बिल्कुल सफ़ेद झूठ। लेकिन भगवान इस झूठ के लिए आप को बिल्कुल क्षमा कर देगा—विश्वास कीजिए!)

'यह पत्ता नहीं है?'....अच्छा दूसरा निकालिए! मैं इस खेल को पचास बार कर सकता हूँ। अम्मा-बाबू जी सबको दिखा चुका। जो-जो हमारे यहाँ आए सब को मैंने दिखाया है। निकालिए दूसरा पत्ता! (गड्डी फेंटने की आवाज़) यह लीजिए यह है जनाब आप का पत्ता।'

'जी नहीं। बिल्कुल ग़लत! मेरा यह पत्ता नहीं है!' लेकिन एक बार फिर से कीजिए न! हाँ हाँ कोशिश कीजिए! आप कुछ नाराज़ हो गए हैं। शायद मेरी ही कुछ ग़ल्ती हो गई हो! देखिए पिछवाड़े बरामदे में बैठ जाइए! वहाँ बैठकर दो एक घंटा इसकी प्रैक्टिस कर लीजिए।....आप को घर जाना है? अच्छा! फिर क्या किया जाय। बड़ा दुख है कि आप अपना ताश का खेल नहीं दिखा सके। मैं समझ रहा हूँ कि इस खेल में आप बहुत चतुराई दिखाते होंगे मिस्टर!.... पर अब क्या किया जाय! होगा-खैर अच्छा नमस्ते साहब!'

—स्टी० लीकाक

नक्षत्री प्रेम और भौतिक लाभ

एक नगर के एक कोने में एक पतिंगा रहा करता था। वह बड़ा भावुक था। उसने एक दिन आकाश में एक चमकता हुआ सितारा देखा और अपना दिल उसी पर फेंक बैठा। जब उससे रहा न गया तो उसने अपने दिल का हाल एक दिन अपनी माँ को बताया। पतिंगे की माँ समझदार थी। उसने अपने बेटे को समझाया... ....

बेटा पतिंगाराम। सितारे दिल लगाने की चीज़ नहीं होते। दिल ही लगाना है तो पुल पर जलने वाली उस बत्ती से अपना दिल लगा। पुल वाली बत्ती है ही इसीलिए कि उसके आसपास तुम सब मँडराओ।

पतिंगे से न रहा गया। जरा प्रगतिशील किस्म का बेटा था, सो उसने अपने बाप से भी अपने इस नक्षत्री प्रेम की दास्तान कह सुनाई। बाप ने अपनी उमर इसी तरह मँडरा कर बिताई थी। उसने सलाह दी.......

'मेरे दिलफेंक बेटे। तेरी माँ ठीक कहती है। पुल वाली बत्ती से दिल लगा कर तुम कहीं पहुँच भी जाओगे! पर इन सितारों के पीछे दौड़ कर तुम कहीं के न रहोगे।'

पर पतिंगे में नया खून था, नया जोश था....उसने माँ-बाप की बात न मानी। हर दिन जब शाम उतरने लगती और सितारा दिखाई पड़ता, यह नौजवान पतिंगा उसकी तरफ़ उड़ना शुरू कर देता। सुबह होते-होते वह थका-माँदा मुँह लटकाए रेंगता हुआ अपने बिल की तरफ़ लौट आता।

एक दिन उसके बाप ने उससे कहा........

'महीनों हो गए, इस बीच तुमने एक बार भी अपना पंख नहीं जलाया। बात क्या है? क्या तुम उधर जाते ही नहीं हो? तुम्हारे दूसरे सब भाई सड़क की बत्तियों के आसपास मँडरा कर बुरी तरह से जल गए हैं....तुम्हारी सब बहनें घर के दियों में एकदम तबाह हो गई हैं। चलो यहाँ से। उठो। जाकर कहीं अपने पंख जलाओ तब मेरे सामने आओ। हुँ-हुँ। इतना बड़ा जवान पतिंगा और उस पर जलने का एक निशान तक नहीं। छिः।

पतिंगे ने बाप का घर छोड़ दिया पर न तो वह सड़क की बत्तियों पर मँडराया और न वह घर के चिरागों पर ही न्योछावर हुआ। सवा-चार प्रकाश वर्ष की दूरी पर जमे हुए उसी सितारे की तरफ़ वह अक्सर चक्कर काटता रहा। उड़ते-उड़ते पतिंगा सोचता कि वह शायद पेड़ की फुनगी में फँस कर रह गया है, इसीलिये पहुँच नहीं पा रहा है। बस इसी तरह हर रात वह उसी सितारे के पीछे आसमानी दौड़ लगाता रहा पर हुआ कुछ नहीं।

अंततः वह पतिंगा बूढ़ा हो गया। रोज वही क्रम दुहराते-दुहराते उसे अपने मन में वह भ्रम हो गया कि।वह सितारे के पास हो आया है और अपने भ्रम को विश्वास बनाने के लिए वह जिससे मिलता उसी को यह बताता कि वह सितारों से मिल चुका है। इस विश्वास

को अपने मन में जमा लेने से उसे बहुत सुख मिला। इसी सुख और आनन्द के सहारे वह अगले कई वर्षों तक जीवित रहा। उसके सभी भाई और बहन बहुत ही कम अवस्था में जल कर मर गए।

कथा की कुछ शिक्षाएँ

(१) जो ऊँची बात की तरफ दौड़ता है वह सदा मृत्यु की झंझट से बचा रहता है। दूसरों का मरना उसके सामने सम्पन्न होता है।

(२) जो अपने माँ-बाप को अपने दिल फेंकने की बात बता देते हैं, वे न केवल बहुत दिन तक जीवित रहते हैं वरन् उन्हें यह भी विश्वास हो जाता है कि जहाँ उन्होंने दिल फेंका था, वह उन्हें मिल गया है।

(३) सड़क की बत्ती और सितारे का फर्क समझना चाहिए। सड़क की बत्ती पर मरने वाले को कोई टके को भी नहीं पूछता।

(४) बिजली के बल्बों पर लट्टू होने वाले पतिंगों पर यह कहानी लागू नहीं होती। वह चाहे जैसे रहें।

(जेम्स थर्बर की एक कथा पर अशंतः आधारित)
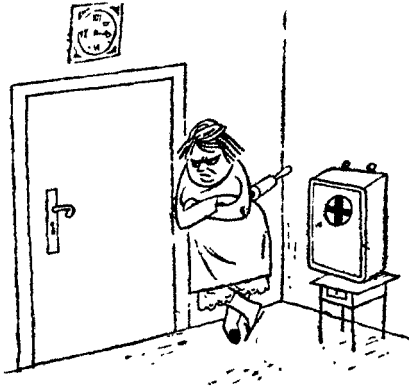
तलाक

जज महोदय के सामने बिल्ली के समान दुबकी हुई सी एक सुन्दर युवती खड़ी-खड़ी कह रही थी—

'पिछले दो वर्षों से मैं बहुत ही अपमानजनक जिंदगी काट रही हूँ। यद्यपि मेरा घर नदी से दूर पड़ता है पर सच मानिए, मैंने नदी में कूद कर जान देने का अब इरादा कर लिया है!'

अपनी इसी बात को बीसियों तरह से—अपराध को और भी अधिक संगीन बनाने के लिए, वह कहती रही। उसके वक्तव्यों से एक ही बात कही जा रही थी कि वह बड़ी संवेदनाशील अबला नारी है और उसका पति एकदम जंगली है। उसे मानव हृदय की कोमल भावनाओं से तनिक भी संबंध नहीं है। इस उजड्ड पतिदेव की जैसी हरकतें हैं, उससे यह निश्चित है कि अबला की जान खतरे में है।

जज महोदय इस प्रकार के झंझटों और घरेलू झगड़ों को निपटाते अपनी उम्र पूरी कर चुके थे। वह बिना गर्दन उठाए, चुपचाप मुकदमे के कागजातों को उलटने-पलटने में मशगूल रहे। सहसा बोले—

'क्या यह तुम्हें मारता है ?'

'मारता है ? आप भी खूब हैं। अजी साहब यह तो उन मर्दों से भी कठोर दिल का है जो अपनी बीवियों को पीट-पाट कर ही शान्त हो जाते हैं। इसमें तो शराफत नाम मात्र की नहीं है। हालाँकि यह शख्स हमेशा मेरे प्यार की कसमें खाता है—कहता है तुम्हारे बिना रह नहीं सकता। पर सच मानिए यह सब बहाना है, झूठ है, फरेब है....'

प्रायश्चित्त कराने वाले पादरी की तरह मुद्रा बनाते हुए जज साहब बोले—

'देखिए, सिर्फ तथ्य की बातें सामने रखिए। हम तो सारी घटनाओं की सही तस्वीर भर चाहते हैं। आप इसलिए मुकदमे से जो संबंधित बातें हों, सिर्फ उन्हीं को कहिए।'

नवयुवती अबला क्रोध से काँपने लगी—

'देखिए जनाब ! पिछले दो साल में जो-जो घटनाएँ घटी हैं, वह सब सोलह आने सच हैं और वही तथ्य है ! रोजमर्रा की ये घटनाएँ मेरी जिन्दगी जहर किए दे रही है। मैंने इसलिए इस व्यक्ति से विवाह नहीं किया था कि यह महोदय मुझे दो साल के बाद ले जाकर कब्र में दफना दें। अगर यही हाल रहा तो मेरे दिल की धड़कन एक दिन अपने आप ठप्प हो जायगी।'

जज की भौंहें कुछ तन गईं—

'कृपा करके उदाहरण देकर बात कहिए। तथ्य कहिए, तथ्य।'

'तो मेरी जान से ज्यादा आपके लिए तथ्यों का महत्व है ? है ना ? आपको उदाहरण देती हूँ ! अभी देखिए इसी पिछले इतवार को ही, इसके कारण मेरा बहुमूल्य शीशा टूट गया।'

'कैसा शीशा ?'

'बहतरीन और बेशकीमती शीशा श्रीमान् ! मेरी एक सहेली ने अपनी समस्त शुभकामनाओं के साथ मुझे भेंट किया था। आप खुद सोच सकते हैं कि जब मैं उसके टुकड़ों को बीन रही थी तो मेरे

मन पर क्या गुजर रही थी। मैं रात भर सिसकती रही ! सुबकियाँ लेती रहीं। उफ....उफ....मेरा....'

'तो उस शीशे के टूटने से आपके पति का क्या संबंध है !'

'इसने मुझे इतना परेशान कर दिया था कि मैंने इसके सिर पर उठाकर दे मारा था। इसने इतनी कोफ़्त की कि मैं न जाने कैसे बड़ा वाला शीशा उठा कर मारना भूल गई !' वह हाँफने लगी थी।

'यह आपको किस तरह परेशान करता है ?'

'अपने बेहूदे व्यवहार से...अपनी चुप्पी से, अपने गधपने से, अपनी शांति से....अपनी...'

'शांति से, क्या कहा आपने ?'

'जी हाँ, श्रीमान ! मेरी सारी भावनाओं को ठेस पहुँचा कर यह चुप्पा बन जाता है।'

जज महोदय ने अपनी गर्दन फिर कागजों में डाल ली।

'अच्छा बताइये। आपको किस तरह की गालियों का सामना करना पड़ता है ?'

'गालियाँ ? मैंने कब गाली का नाम लिया जनाब ? गालियाँ तो यह नाम को भी नहीं देता।'

'तब किस तरह आपको वह कष्ट देता है ?'

'यह चुप्पा है, चुप्पा !'

'चुप्पा ? यानी चुप रहता है ?''

'जी हाँ बिल्कुल चुप....निर्जीव...शांत....एकदम असभ्य लोगों की तरह। जैसे मुँह में जबान है ही नहीं।'

'तब तो, आपको भी चुप रहना चाहिए।'

'चुप ? चुप मैं तब रह सकती थी जब मैं दूसरी तरह की भावनाहीन एक काठ की पुतली भर होती। मैं चीखती हूँ, चिल्लाती हूँ.... मेरा तो बुरा हाल है...मुझे तो स्नायुविक कमजोरी लगती है....मेरे दिल की बड़ी खराब हालत है, पर इसे कुछ फ़िक्र नहीं है। ऐसे समझता

है कि जैसे हमारी कभी शादी ही नहीं हुई है। इसे बस एक रट है—शांत रहो। जानता है न कि मुझे इन बातों से बड़ी घृणा है। चिढ़ है। मैं पगला उठती हूँ ऐसी नसीहत सुनकर।'

जज महोदय ने अपना सिर खुजलाया और बोले—

'अच्छा पिछले दो वर्षों में आप उस पर बिगड़ती और झल्लाती क्यों रही हैं ? क्यों ?'

'क्यों ? क्योंकि उसके भीतर कोई भी महत्वाकांक्षा नहीं है। यह शख्स अपने जीवन से हर तरह से संतुष्ट हो गया है। आज दुनिया में हर आदमी विदेश भ्रमण पर जाता है लेकिन यह आदमी कहता है कि वह दूसरों से लाभ नहीं उठा सकता। हर आदमी विदेश नहीं जा सकता। यह आदमी कहता है कि अगर सब आदमी विदेश जाने को ही बात तय कर लें तो यहाँ कौन रहेगा ? इस तरह की बातें करके यह मेरे अबलापन को चुनौती देता है। मैंने इसकी चुनौती स्वीकार कर ली है। हमारी जितनी भी सुन्दर और आकर्षक वस्तुएँ थीं वह सब इसी के नाम पर टूट चुकी हैं। रोज इसे बताती हूँ कि इसके अमुक-अमुक मित्र विदेशों से क्या-क्या लाए हैं। पर इसे कुछ नहीं होता। मैं अकेली क्या कर सकती हूँ। दूसरों की औरतें अपने शरीर पर ऊपर से नीचे तक सिल्क के अच्छे नमूनें पहिनती हैं पर मेरा यह ब्लाउज अब भी पुराना ही है।....अब जो कोई भी देखता होगा, वह भला क्या कहता होगा ? यही सोचता होगा कि देसी ब्लाउज पर इतना गुमान किए हुए हैं। पर यह आदमी....! इसके कानों पर जूँ नहीं रेंगती ! यह कहता है कि इसकी नौकरी से और विदेश से कोई संबंध ही नहीं। पर भले आदमी क्या तुम किसी डेलीगेशन में नहीं जा सकते ? क्या तुम किसी टूरिस्ट कार्यालय में भी नौकरी नहीं कर सकते ? किसी चीज के विशेषज्ञ बन कर भी नहीं निकल भाग सकते ? असल बात तो यह है कि वहाँ जाने और जाकर रुपया खर्च करने का

कोई जरिया होना चाहिए ? पर इसे क्या ? यह तो मेरी इज्जत ले लेने पर तुला हुआ है। यह तो...

'तो बस इसीलिए आप तलाक चाहती हैं ? क्यों ?' जज ने धारा प्रवाह भाषण में एक बाँध-बाँध दिया। अबला की साँस तेजी से धौंकनी की तरह चल रही थी।

'नहीं....नहीं....यही नहीं। अभी कुछ दिन हुए मैंने सिनेमा देखने को कहा था। यह मुझे ले गया। टिकट खत्म हो गया और यह टिकट भी नहीं ले पाया ! मेरा तो दिल बैठ गया, पर इस शख्स के चेहरे पर जरा भी शिकन नहीं आई। यह तो यही चाहता भी रहा होगा ! अब जनाब मेरे दुख का अन्दाज लगाइए कि मेरा तो दिल इतना भारी और आप मुझसे उल्टे पार्क में घूमने के लिए कहते हैं।....समझे श्रीमान् ! दूसरे के सदमें को यह आदमी...'

जज महोदय पेन्सिल से मेज खटखटाकर बोले—

'हूँ ! तो यह बात है। आपका विचार है कि आपके पतिदेव सिफारिश कराकर अपना काम निकालना नहीं जानते और आपकी बातों पर बिल्कुल ध्यान नहीं देते। है ना !....मैं आपकी मजबूरी समझता हूँ। आपके असन्तोष को भी समझता हूँ....पर तलाक के लिए सिर्फ यही कारण काफी नहीं है।'

'काफी नहीं है ? जज साहब, आप मेरी जगह पर होते तो आप भी यही करते। मैं बहुत सह चुकी हूँ ! बस, बहुत हो गया। अब मैं एक क्षण भी नहीं सह सकती। मैंने बहुत बर्दाश्त किया....बस...'

'मैं आपकी वेदना समझता हूँ। मुझे आपसे हमदर्दी है। पर अगर बावजूद आपके चीखने-चिल्लाने के उस आदमी का चुप रहना ही आप जुर्म साबित करना चाहती हैं तो देवी जी ! तलाक मिलना बड़ा कठिन हो जायगा ! समझीं ?'

'पर इतना ही नहीं है श्रीमान्। वह तो बड़ा धूर्त है।'

'वह कैसे ?'

'उसने एक रजिस्टर बना रक्खा है !'

'रजिस्टर ! क्या मतलब ?'

'देखिए जब भी मैं क्रुद्ध होती हूँ और कुछ बकती-झकती हूँ तो वह सब कुछ उसी रजिस्टर में नोट करता जाता है।....देखिए उसकी तरफ....देखिए....यहीं अदालत में बैठा हुआ वह उसी रजिस्टर में सब कुछ लिख रहा है। अब तो आप खुद ही देख रहे हैं। पति पत्नी के बीच में यह रजिस्टर कितना वीभत्स है, आप स्वयं सोच सकते हैं। मेरे मुँह से निकले हर शब्द को वह उसमें नोट करता जाता है, जैसे वह कोई हिसाब-कर्ता हैं। जब मैं थक जाती हूँ और मेरा दिल बैठने लगता है तब वह बड़े भोले मेमने की तरह मेरे पास आकर बैठता है और कहता है कि प्रिये ! तुम मुझे मूर्ख, लापरवाह, स्वार्थी आदि कहती हो पर इसमें तो बड़ा स्पष्ट विरोधाभास है। जीव-शास्त्र का उपयोग भी पूरा नहीं है। तुम मुझे सिर्फ गैंडा, गधा आदि कह कर छोड़ देती हो जब कि अन्य बहुत से जीवों का उपयोग इसमें कर सकती हो। और सुनो इस सप्ताह में तुमने दस-बारह बार कहा होगा कि तुम बीसवीं शती की शैतानियत के अवतार हो। इससे यह स्पष्ट नहीं होता कि बीसवीं शती शैतान है या मैं ? एक ही सप्ताह में इतने विशेषण इस्तेमाल करके तुम अपना कोष समाप्त किये दे रही हो।' इतना कह कर वह मेरा सिर सहलाने लगता है।

'तो आप क्या करती हैं ?'

'मैं इस अपमान को बर्दाश्त करती हूँ। इसे झेलती हूँ। जरा उसकी ओर देखिए। कितना चुप्प होकर बैठा है। हे न्यायाधिपति ! मेरी इस शैतान से रक्षा कर एक अपराध से मुझे....'

'कैसा अपराध ?' जज महोदय अपराध का नाम आते ही चौंके

'यह मेरी आत्मा की हत्या कर रहा है। जज साहब ! इसे लिखने से रोक दीजिए....कम से कम अदालत में तो अपमान न करे ! बन्द करो यह बेहूदगी !...तुम सभा और जल्सों में जा-जाकर यह

रक्खा करो ! बन्द करो....कसाई....जल्लाद मेरी कब्र पर यह रजिस्टर रखना....अरे तू तो साँप है साँप....'

'कौन साँप है ?' अभी तक चुपचाप बैठा हुआ उसका पति बिजली का तार छूकर जैसे उछल पड़ा, 'सोच लो, क्या कह रही हो ?' सहसा उसके बोल झड़ने से महिला घबड़ा गई। फिर भी सिट-पिटा कर बोली—

'मैं तो तुम्हें घड़ियाल कहना चाहती थी ! मगरमच्छ और....सब कुछ....'

'नहीं नहीं ! मैं तुझे समझता हूँ। इतने आदमियों के सामने तूने बुरा-भला कहा ! मुझे जहरीला साँप कहा। श्रीमान जज साहब, अगर यह सचमुच क्रोध में है तो कोई बात नहीं। इसे बकने दीजिए। मैं तो पुरुष हूँ। इसकी दुर्बलता सह सकता हूँ। पर यदि यह क्रोध में नहीं है तो मैं कहना चाहता हूँ कि इसने इधर खुल्लमखुल्ला मेरा अपमान करना शुरू कर दिया है। यह मुझे कीड़ा, भुनगा और मच्छर कहती है। कहती है कि तेरे ऊपर डी. डी. टी. कर दूँगी। भला यह डी. डी. टी. करेगी कहाँ से ? मैंने तो डी. डी. टी. इसीलिए घर में खरीदकर रखी ही नहीं। आप देखेंगे कि इसकी बात अपने आप ही कितनी झूटी है। यह कहती है कि मैं सोते समय खर्राटें भरता हूँ। वह एकदम गलत है। यह कहती है कि मेरे मुँह पर बचपन में दाग थे। मैं अपनी बचपन की फोटो दिखा सकता हूँ। दाग निकल आने पर इनाम दूँगा। आप कह सकते हैं फोटो मैंने ठीक कराई होगी। पर मेरे पास उसके सबूत हैं। सोते समय आप मेरे पास टेप रिकार्डर रख दें, मुझे कुछ उज्र नहीं है। अगर मेरा खर्राटा आ जाय तो कहिएगा। पर श्रीमान, मैं इस औरत की इस बात का समर्थन करता हूँ कि तलाक मंजूर कर लिया जाय। जिसे मैं अब तक प्यार करता रहा हूँ यदि वह मेरे प्यार को नामंजूर करती है तो जाने दीजिए....यदि उसने मुझे मात्र गैण्डा

ही कहा होता तो भी मैं कुछ न कहता, पर वह मुझे जब भुनगा और कीड़ा समझती है तो जाने दीजिए। यह तो हद से ज्यादा हो गई।'

पति का यह भाषण सुनकर पत्नी का मुँह अवाक् होकर खुला रह गया। पर उसके भाषण के खत्म होते ही वह दौड़कर उससे चिपट गई और बोली—

'अरे तुम नाराज हो गये ? जैसे तुम मुझसे नाराज हो वैसे ही अगर तुम दूसरों से भी नाराज होना सीख लो तो हमारी-तुम्हारी किस्मत बन जाय....जज साहब अब हमको तलाक नहीं चाहिए। हमें माफ कर दो प्रियतम ! इसके पहिले ही तुमने अपनी जबान जरा-सी हिलादी होती तो यह सब क्यों होता ?'

(एक यूगोस्लाव कहानी)

दांत की करामात

लोगों को अपने दाँत के बारे में बातचीत करने का मर्ज होता है। उसके बारे में बातें करते वह कभी थकते नहीं। कैसे-कैसे दाँत के डाक्टरों से उनका पाला पड़ा, इसे जिस रुचि के साथ वे बताते हैं वैसा कोई दूसरा नहीं कर सकता।

सच पूछिए तो दाँत वाले डाक्टर की कुर्सी इस दंतकांड का एक अत्यंत लघु क्षण होता है। इस काण्ड की प्राथमिक स्थिति अत्यंत दुखद होती है अर्थात् बाहरातुर दाँत को तुड़वाने का निश्चय करने से लेकर डाक्टर के औजार लेकर जुट पड़ने तक प्राण संकट में पड़े रहते हैं। दाँत निकालने के लिए मरीज को बेहोश भी करते हैं पर असली बेहोशी का आलम तो वहीं से शुरू होता है जिस क्षण से मरीज डाक्टर के पास जाना तै कर लेता है।

उस क्षण से भयावह दूसरा कोई क्षण शायद ही होता होगा। जब आपके मुँह में जीभ महाशया इधर-उधर घूमती हुई उस ठौर

पहुँच जाती हैं, जहाँ उन्हें लगता है कि कुछ गायब हो रहा है तो दुनियाँ की समस्त गति उस समय जैसे एक बार ठिठक जाती है। आप चुप-चाप छत की कड़ियाँ गिनने लगते हैं। चटपट अपनी जबान वहाँ से हटाकर आप हँसकर टालने की चेष्टा करते हैं—समझाते हैं—

'कुछ नहीं यार! दिन भर के काम से चूल ढीली हो रही है और कुछ नहीं है। जरा-से आराम से सब ठीक हो जायगा।'

तैसे ही थोड़ी देर बाद आपको फिर लगता है कि आपकी जबान टहलते-टहलते फिर वहाँ पहुँच जाती है!

इस बार संदेह की गुंजाइश ही नहीं रह जाती! जगह खाली हो रही है। 'टु लेट' नोटिस लग रही है। उसे भरवाने का भी इंतिजाम करना होगा। दाँतवाले डाक्टर को बुलाना होगा या फिर उसके पास वक्त निश्चित करके जाना पड़ेगा। मान लीजिए कि टालते-टालते आपने मंगलवार को यह शुभ निश्चय कर ही डाला। 'डाइरेक्टरी' में आपने दाँत डाक्टर के टेलीफोन का नम्बर ढूँढ़ना शुरू किया। सहसा यह जानकर कितना सुख मिलता है कि 'डेंडिस्ट' का टेलीफोन नम्बर डाइरेक्टरी में है ही नहीं। अब जिसके पास टेलीफोन तक नहीं है, उससे किस प्रकार आने-जाने का समय निश्चित किया जा सकता है? जी हाँ, कतई नामुमकिन है!

बुधवार के दिन आपकी जीभ आपके निश्चय को कुछ अधिक बल देती है। डाक्टर से मिलना ही चाहिए। पर दिन भर का काम.... क्या कहा जाय? पाँच तो ऐसे ही बज गया! दम मारने को भी फुर्सत नहीं मिली। वैसे आज तो दाँत में ज्यादा तकलीफ भी नहीं थी। अगर दाँत का दर्द ऐसे ही रहे तो अगले सप्ताह तक काम चल सकता है। अगले सप्ताह में काम भी हल्का है और किसी तरह छुट्टी भी ली जा सकती है।

शनिवार तक आप दृढ़ निश्चय कर लेते हैं कि दाँत के डाक्टर से मिलना ही होगा। बिना मिले काम न होगा! पर शनिवार के

दिन तो आधे दिन की यूँ ही छुट्टी हो जाती है। पता नहीं, डाक्टर को छुट्टी रहेगी भी या नहीं ? दरअसल दिन तो सोमवार का होता है।

सोमवार के दिन जब आप फिर टेलीफोन डाइरेक्टरी में डेंटिस्ट का नाम ढूँढ़ते हैं तो आपको बड़ा ताज्जुब होता है कि पिछले मंगलवार और शनिवार के बीच में इस डेंटिस्ट ने अपना नाम इस डाइरेक्टरी में कैसे घुसवा लिया। लेकिन भाग्यवशात् टेलीफोन लाइन ही खाली नहीं मिलती। चलिए, आज तो यों कटा। पर मंगलवार ? आज तो भगवान ही कुछ टेढ़े हैं। डाक्टर से टेलीफोन मिल जाता है और वह बृहस्पतिवार को साढ़े तीन बजे का वक्त भी तै कर देता है।

साढ़े तीन का वक्त नजदीक आ रहा है। यह साढ़े तीन का वक्त बड़ा वाहियात वक्त होता है। आदमी की मूल शक्ति इस समय घट जाती है। डाक्टर के घर में घुसने के पहिले एक बार सड़क पर सरसरी निगाह फेर कर ही आप भीतर घुसना चाहते हैं—'ओह ! कितने सुखी और मगन बच्चे हैं। उन्हें क्या पता है कि जीवन क्या होता है। और यह आदमी ठाठ से हैट लगाए हुए चला जा रहा है शायद आज तक बच्चू को दाँत ने परेशान नहीं किया ! तभी इतने मौज में चला जा रहा है !'

और लिफ्ट के अन्दर प्रवेश !

ऊपर चढ़ने के लिए जैसे ही उसने दरवाजा बन्द किया कि अन्तिम आस भी टूट गयी। वैसे लिफ्ट में एक मौका ऐसा आ सकता है कि लिफ्ट बीच में टूट जाय और टूट कर नीचे गिर जाय। किन्तु यह बड़ी भारी आशा करना है, जिसका पूरा होना बड़ा कठिन है। कुछ ऊपर-नीचेवाली मंजिल बता कर देर-सवेर की जा सकती है ! पर लिफ्ट आपरेटर को हमेशा सही मंजिल बताने से उस पर बड़ा रोब पड़ता है। देर कर भी लूँ, पर अन्ततोगत्वा लिफ्ट से उतरना ही है और....

दाँत के डाक्टरों का प्रतीक्षालय सब कहीं एक जैसा ही होता है—वही सड़े हुए मरीजी चेहरे जो बैठे-बैठे प्रतीक्षा किया करते हैं! आँख फाड़े आप सामने लड़ाई की तस्वीरें देख रहे हैं—मन में आता है कि भगवान ने हमें चींटी क्यों नहीं बनाया कि इस दारुण दुख से बच जाते! वहाँ के मरीजों को छोड़कर, आप से बुरी हालत में कोई दूसरा भी होगा, इसकी कल्पना आप नहीं कर सकते हैं।

उधर....उस कोने में वह जो बैठी हुई 'दन्त विवेचन' नामक पत्रिका उलट रही है उसकी आँखों में तो आँसू भरभराए हुए हैं। जरूर कोई बीहड़ तकलीफ उसे होगी। उसे कितनी मुसीबत लग रही होगी। इससे ज्यादा वह कभी परेशान नहीं हुई होगी। पर उसे देख कर अपने मन को कितनी शांति मिल रही है!....हुँ . हुँ, ये औरतें भी कितनी कायर होती हैं! जरा-सी बात पर ही....

तभी नर्स का प्रवेश होता है। सब से प्रश्न पूछती जाती है। हर आदमी बचने की जैसे अन्तिम चेष्टा करते हुए उसकी नजरें बचाने की कोशिश करता है। पर अन्ततः उसकी निगाहें आप की निगाहों से मिल ही जाती हैं और वह आपको पहिचान कर मुस्कुरा उठती है। हे भगवान! ये लोग भी कैसी जालिम होती हैं। इनके इस मृदु व्यवहार पर इनके ऊपर मुकदमा चलाना चाहिए। इस तरह की हरकत से तो यह सब को खत्म कर सकती हैं।

"डाक्टर साहब आपको अब देखेंगे। आइए।" वह कह पड़ती है।

और आप? आप अकारण मुस्कराते हुए उस भयावह कमरे में प्रवेश करते हैं जहाँ चारों ओर डरावने दाँतों के सेट लगे हुए दीख पड़ते हैं। बरनर लैंप से हल्की नीली गैस भकभक-भकभक निकल रही है। बरनर पर कुछ खौल रहा है। सब कुछ अजीब-सा, डरावना-सा लग रहा है। जैसे अभी कुछ बड़ी भारी बात घटित हो जायगी। आप आँख बन्द करके चुपचाप कुर्सी में धँस जाते हैं।

अब आप उस आध्यात्मिक सुख की कल्पना कीजिए जो आपको इस यातना से मुक्ति के बाद प्राप्त होता है। सारे कष्ट समाप्त हो गये। और क्या हुआ? कुछ हुआ?

'हा हा हा हा हो हो हो हो....!....कुछ तो नहीं। वैसा तो हूँ। कुछ भी नहीं महसूस हुआ।'

दाँत के डाक्टर से अब दोस्ती करने की बारी शुरू होती है। अच्छा आदमी है। उसके औजार भी अच्छे हैं। आपकी जिज्ञासा भी अब जगने लगती है। 'अच्छा साहब, इससे आप क्या करते हैं। क्या है यह? बात यह है कि जरा-सी बात का बतंगड़ बना लिया था मैंने! हा हा....हा हा! अच्छा डाक्टर साहब, आपके परिवार में कौन-कौन हैं? कैसे हैं आपके लड़के, कभी आइयेगा....अच्छा!'

कहकर हाथ मिलाते हुए आप नमस्कार करके बाहर आते हैं।

और सड़क पर निकलते-निकलते आपका दृष्टिकोण एकदम पलट जाता है। कितनी बढ़िया सड़क है। कितने अच्छे आदमी सड़क पर चल रहे हैं! जिन्दगी में बहुत रस है, उसे जरूर भोगना चाहिए! सोमवार को कुछ और करना है, यह आपको याद ही नहीं रह जाता। ऐसी-की-तैसी सोमवार की। सोमवार तो हमेशा ही आता है। इस वक्त तो दुनिया सचमुच ही बहुत अच्छी लग रही है।

यह तो सिर्फ एक दाँत की करामात थी!

(बेंचले की कथा का छायानुवाद)
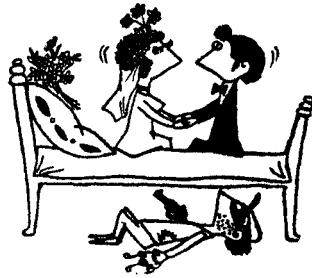
मुझे प्यार करो तो

मेरे खतों को भी !!
(प्रेम की रोशनी के लिए, रोशनाई का इस्तेमाल)

एक कहावत है कि आदमी की संगत जानने से उसका चरित्र पता चल सकता है ? यह भी कहा जाता है कि आदमी जैसे गाने गाता है, उससे भी उसका रंग खुलता है ! वैसे कहने को यह भी कहा जा सकता है कि आदमी जैसी किताबें पढ़ता है, जैसी तस्वीरें पसन्द करता है, जैसे कपड़े पहिनता है, उससे भी काफी पहिचाना जा सकता है !

यह सब सच है ! लेकिन मेरे ख्याल से, आदमी के चरित्र की यह सबसे अच्छी पहिचान हो सकती है कि वह कैसे-कैसे प्रेमपत्र लिखता है ? हर आदमी मर्द या औरत (लड़कियों समेत) का अपना एक खास तरीका होता है जिस, ढंग से वह प्रेमपत्र लिखता है ।

इस बात की गवाही के लिए मैं कुछ प्रेमपत्र आपकी सेवा में प्रस्तुत करना चाहता हूँ! वर्तमान और भूत दोनों के। शायद यह मेरे कहने की जरूरत नहीं है कि ये खत कल्पना के बल पर नहीं खड़े हैं बल्कि पोस्ट आफ़िस से उड़ाए हुए नमूने हैं!

(१)

पुरानी स्टाइल का प्रेमपत्र

सन् १८२८ में संदेशवाहक के हाथ भेजा गया दि हाल, नाट्स, इंगलैण्ड के मिस्टर आर्डेन्ट हार्टफ़ुल का प्रेमपत्र मिस एन्जेला बल-शेनर्बन, दी शर्बराज़, हाप्स, पार्टस, साप्स, इंगलैण्ड के नाम—जिसमें एक मछली की भेंट स्वीकार करने की प्रार्थना की गई है।

'आदरणीय मिस एन्जेला,

आपके आदरणीय पिता और पूज्य माताजी की रज़ामंदी पर, मैं अपने संदेशवाहक के हाथों यह मछली भेजने का साहस करता हूँ। आदरणीय मिस एन्जेला, मेरे मन में बहुत दिनों से यह आकांक्षा थी कि कभी मेरा ऐसा भाग्योदय हो कि मैं आपको अपनी मेहनत की कमाई—यह मछली-भेंट कर सकूँ। आज आपके इलाक़े से निक-लते हुए नाले में कँटिया डालने पर मेरे भाग्य ने, आपके पूज्य पिता जी की अनुमति के साथ, इस मछली के रूप में मेरा साथ दिया!

इसे आपके भोजन के लिए भेंट करते हुए, पूज्य माताजी की अनुमति के साथ, मैं यह कहना चाहता हूँ, कि इस मछली के अनोखे भाग्य से वह व्यक्ति ईर्ष्या करना चाहता है, जो कहना चाहता है लेकिन कह नहीं पाता, लेकिन उसी तरह सोचता है जैसे कि अगर यह सोच पाती—यह मेरी भेंट, मछली!!

आपके माता-पिता के लिए पूर्णरूपेण आदर और श्रद्धा व्यक्त करते हुए, विश्वास कीजिए।

आपका पुजारी
आर्डेंट हार्टफ़ुल!

(२)

आज का नया स्टाइल

युनिवर्सिटी में अंगरेज़ी के पिंगल और छन्द-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान और लन्दन टाइम्स के विख्यात निबन्धकार प्रोफ़ेसर अलबर्ट्स डिगनस द्वारा रचित एक प्रेम-पत्र जो मेमफिसटेन की फ़ॉलीज़इन्ट्रैंज़िट की कम्पनी में काम करने वाली मिस मेसीबेटिट को लिखा गया।

"मेरी गौरइया ! मेरी चुन-चुन, कैसी है वो ? यहाँ होती तो मज़ा आता। मेरी कुटकुट, आज सुबह इतना मज़ेदार पत्रआया कि उसे लेने के लिये लपका तो टाँग टूटते-टूटते बची। तो सचमुच वह मुझे इतना चाहती है? क्या तुम सच कहती हो ? तुम बिल्कुल चॉकलेट हो। सच-मुच तुम कोई चिड़िया हो। टुनटुन, तुम मेरी बेबी हो"—और इसी तरह के चार पेज रंगे हुये। इसके बाद प्रोफ़ेसर साहब अपना निबन्ध पूरा करने लगे "अफ्रीका क़ी काली जातियों में अंगरेज़ी भाषा का पतन !"

(३)

एक पक्का देहाती प्रेम-पत्र

वरमाउण्ट के ऑरकेडिया पोस्ट ऑफ़िस से मिस्टर एफ्रेम क्लोवरसीड का प्रेम-पत्र ऑरकेडिया की ही मिस नीटीसिंगर के नाम जो इस वक्त न्यूयार्क के 'होम रेस्ट्राँ' में काम करती हैं :—

प्यारी नॉटी,

कल रात बहुत ज़बरदस्त कुहरा पड़ा जिससे शायद गेहूँ की फ़सल को काफी नुकसान पहुँचेगा। पिछले मंगल तक इतना कोहरा नहीं था कि तुमने न देखा हो। कुछ लोगों का ख्याल है कि अबकी का जाड़ा कटना मुश्किल है। कुछ लोगों का कहना है कि अगर नये साल के दिन और इसके बीच में कुछ साफ़ हो गया तो शायद सुधर जाय लेकिन कुछ लोग कहते हैं कि नहीं सुधरेगा। चरागाह में दो कौवे

दिखाई तो पड़े थे लेकिन उनका क्या भरोसा। मेरे अँगूठे में फिर तकलीफ़ हो गई है। लेकिन गठिया का कुछ हिसाब ठीक है। बाँया पैर ज़रा कड़ा है लेकिन मालिश से दाहिनी बाँह में फ़ायदा है। अच्छा भई बन्द करता हूँ।

—एफ्रेम

(४)

हाइड्रॉलिक प्रेम-पत्र

न्यूएण्टोरियो के जंगल रेडगुल्कफ्रीक से हाइड्रॉलिक इंजीनियर का प्रेम-पत्र मिस जॉरजियासिम्स के नाम। हरएक जानता है कि हेरी किस तरह से जॉरजिया के लिये परेशान है।

"प्रिय जॉरजिया,

कल झाड़ियों से सोते हुये यहाँ पहुँचे। ऐसी रद्दी जगह है जहाँ एक सीधी लाइन नहीं है। यहाँ की चट्टानें बिलकुल बेसैल्टिक हैं। कहीं-कहीं दोमट भी है। यहाँ के खनिज तत्वों का पूरा अनुमान तुम्हें बताना ज़रा मुश्किल होगा लेकिन अगर तुम बहुत नीचे जाओ तो गैस तो शर्तिया मिलेगी। अच्छा जॉरजिया, अब बन्द करता हूँ!

उत्तर : जो सबको मिले

सन् १८२८ में मिस्टर आर्डेंट हार्टफ़ुल को यह जवाब मिला :—

"सर जूशुवा और लेडी ब्लशनबर्न मिस्टर आर्डेंट हार्टफ़ुल के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करते हैं और इस मछली के लिये जिसे मिस्टर हार्टफ़ुल ने कृपा करके उनकी पुत्री के पास भेजा है और जिसे उन लोगों ने रुचि से खाया है वह धन्यवाद देते हैं। सर जूशुवा और लेडी ब्लशनबर्न प्रसन्न होंगे यदि मिस्टर हार्टफ़ुल मछली से संबन्धित अपने भविष्य के इरादों को पूरा करने के लिये कभी स्वयं पधारें और बात-चीत करें।

जो प्रोफ़ेसर को मिला

मिस मेसीबेटिट द्वारा उत्तर

"प्रिय प्रोफ़ेसर,

अत्यन्त कृतज्ञता के साथ आपको प्रेमपत्र की स्वीकृति भेजती हूँ। आपने जो प्रेम प्रदर्शित किया है उससे मुझे अत्यन्त सुख और सन्तोष मिला।" (इसके बाद मेसी 'प्रेम-पत्र लेखन कला' से खत उतारने से ऊब गई और उसने आगे अपनी शैली में लिखा) अब मैं कंसस सिटी जा रही हूँ। टा-टा—

—मेसी

नीटी द्वारा एफ्रेम को

"डियर एफ्रेम,

तुम वहाँ हो, बड़ी खुशी हुई। वहाँ इतने कुहरे में जाड़े में अब भी कौवे दिखाई देते हैं। यह अच्छा है अभी तुम्हारा अँगूठा ठीक नहीं हुआ। यह जानकर दुख हुआ तुम्हारा गठिया अच्छा है जान कर खुशी हुई। तुम्हारी टाँग अच्छी है जान कर खुशी हुई।

—नीटी

टोरेण्टो की जॉरजिया मिस द्वारा उत्तर

उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

× × × ×

अन्त में पाठकों के लिये थोड़ी सी जिज्ञासा। इसमें से किस जोड़े की शादी सबसे पहले होगी और देर तक चलेगी ?

ठीक है, आपने ठीक और बहुत जल्दी समझा। अक़्लमन्द आदमियों को इसके समझने में देर नहीं लगती।

(लीकाक की रचना)

संग्रह वृत्ति

जैसे कि बहुत से आदमियों के दिमाग़ में यह बात आती है, मेरे भी मन में कई बार यह चक्कर उठा कि दुनियाँ की अजीब चीज़ों को इकट्ठा करके अपने घर को नुमाइश बनाऊँ !

शुरूआत हुई डाक के टिकटों से। मेरे एक मित्र बाहर घूमने गए हुए थे। उन्होंने मुझे एक ख़त भेजा जिस पर एक तिकोना टिकट लगा हुआ था। चटपट उछल पड़ा—'बस-बस ठीक है। डाक के टिकटों का ही संग्रह करूँगा और इसी में अपनी ज़िंदगी लगा दूँगा।'

दूसरे ही दिन मैं एक एलबम ले आया जिसमें सभी देशों के टिकट इकट्ठा करने के खाने बने हुए थे। मैंने डाक टिकट इकट्ठा करना शुरू कर दिया ! तीन दिनों तक लगातार बड़ी अच्छी प्रगति रही। मेरे एलबम में इस समय पाँच टिकट हो गए थे—

एक—साउथ अफ्रीका का डाक टिकट—

एक—एक आने का टिकट हिन्दुस्तान की सरकार का।

एक—दो आने का टिकट हिन्दुस्तान की सरकार का।

एक—चार आने का टिकट हिन्दुस्तान की सरकार का।

एक—आठ आने का टिकट हिन्दुस्तान की सरकार का।

इसके बाद डाक टिकट संग्रह टप हो गया। बातचीत के दौरान मे अक्सर मैं ठाठ से कहा करता था कि मेरे पास साउथ अफ्रीका के कुछ नायाब डाक टिकट संग्रह में हैं! लेकिन कुछ दिनों बाद अपने ही इस झूठ से तबीयत एकदम ऊब गई!

सिक्के इकट्ठा करने का काम मैं हमेशा रह-रह कर किया करता हूँ। किसी वक्त भी मेरे हाथ अगर विक्टोरिया का पैसा पड़ जाता तो मैं सोचने लगता हूँ कि अगर कोई आदमी इन्हें इकट्ठा करना शुरू कर दे तो कुछ ही दिनों में उसके पास एक बहुमूल्य संग्रह हो जाय! पहिली बार जब मैंने यह काम शुरू किया तो मेरे उत्साह का कुछ न पूछिए! बहुत दिनों तक मेरे पास बहुमूल्य संग्रह बना रहा। उसमें कई अदद सिक्के थे—

नं० १—नैपाल सरकार एक पुराना ताँबे का पैसा। असल में यही सबसे बहुमूल्य था। मेरे एक मित्र ने मुझे यह दे दिया था तब से यह बराबर मेरे पास है।

नं० २—भारत सरकार का एक पीतल का अधन्ना। देखने में आधुनिक, मगर काई लगी हुई।

नं० ३—भारत सरकार की जस्ते की इकन्नी। घिसी हुई। सन् नहीं पढ़ मिलता।

नं० ४—भारत सरकार की एक चाँदी की अठन्नी। अच्छी लगती है।

नं० ५—एक पुराना रुपया जो नए जैसा लगता है!!

यह संग्रह यहाँ तक पहुँचा। पूरे जाड़े भर मैं यह इकट्ठा करता रहा और मुझे अपने संग्रह पर गर्व होने ही वाला था कि अपने एक मित्र के साथ सिनेमा जाना पड़ा और, नतीजा यह हुआ कि मेरे संग्रह में से

नं० २, नं० ३, और नं० ४ और नं० ५ के सिक्के एकाएक खर्च हो गए। उसके बाद मैंने बाकी संग्रह को एक दान वाले बक्से में डालकर चैन की साँस ली!

उसके बाद खुदाई से निकली हुई चीज़ें इकट्ठा करने की धुन समाई। परन्तु जब दस साल के भीतर मुझे सिर्फ दो ही चीज़ें संग्रह के लिए मिलीं तो मेरा दिल एकदम टूट गया।

एक मेरे मित्र ने दिखाया कि उसके पास कुछ पुराने हथियारों का बढ़िया संग्रह था। कुछ दिन तक उसका संग्रह देखकर मेरे ऊपर वह 'आइडिया' ऐसा चढ़ा रहा कि मैंने भी कई मनोरंजक हथियार इकट्ठा किए जैसे—

नं० १—एक गज़ से भरी जाने वाली पुरानी-बंदूक जिससे मेरे चचा शादी-ब्याह पर हवाई फुलझरी छुड़ाया करते थे।

नं० २—एक चमड़े का कोड़ा जो मेरे बाप की फिटनगाड़ी में था।

नं० ३—एक पुराना तीर-धनुष जिसे भारत के अलावा देश विदेश की जंगली जातियाँ भी इस्तेमाल करतीं थीं!

नं० ४—एक पुराने किस्म की तलवार—तलवार ऐसी जिसे देखकर दर्शकों के मन दहशत उठ खड़ी होती है कि उसने क्या-क्या काम किए होंगे? मैंने अपने इस संग्रह के तीसरे दिन हुए तलवार को-तलवार क्या—चाकू को तरकारी काटने के काम में बेकार समझकर फेंक दिए जाने पर घर के कबाड़खाने में पड़ा पाया!

अपने इस संग्रह को बहुत दिन तक मैं रक्खे रहा। एक दिन ऊबा कर मैंने एक कुमारी जी को उनके विवाह के शुभ अवसर पर उसे भेंट के रूप में दे दिया। भेंट उन्हें कुछ पसंद नहीं आई और नाहक ही हम लोगों के संबंधों में कुछ तनातनी भी बढ़ गई!

ग़रज़ यह कि अगर आपको संग्रह का ही शौक है तो मेहरबानी करके सिर्फ सिक्के इकट्ठा करने का धंधा कीजिए। वही कभी-कभी काम आ जाता है। और उसके इकट्ठा करने में मन भी लगता है।

(लीलॉक की एक रचना पर आधारित)
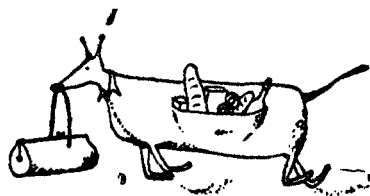
न्याय से मुक्ति

कस्बे में आये दिन इतने झगड़े होते थे कि वहाँ वालों को चैन नहीं मिलती थी। रोज दौड़-दौड़ कर शहर जाते, वकीलों की जेब भरते और फिर नये मुकदमे की तैयारी करने लगते। कई बार उन लोगों ने मिलकर इस समस्या का समाधान सोचा—पर कुछ न सूझा। झगड़े खत्म होने का नाम ही न लेते थे। आखिरकार कस्बे वालों ने मिलकर यह तय किया कि अपने झगड़े वे खुद ही निबटाया करेंगे। इस तरह वे अपना झगड़ा भी तय कर लेंगे और कस्बे का पैसा बाहर भी नहीं जायगा। बहुत कोशिश के बावजूद कस्बे का कोई आदमी जज बनने के लिए तैयार न हुआ। हर आदमी झगड़ा करना ही अधिक पसन्द करता था, उसका न्याय करना उसके लिए ग्राह्य न था। कस्बे वाले अपने कस्बे में किसी को जज के काम के लिए राजी न पाकर पास के गाँव से एक खाली आदमी पकड़ लाये और उसे खाने-कपड़े पर अपने कस्बे का जज बना दिया।

जज ने आते ही वहाँ पर जेल बनवायी, पुलिस ठीक की और लोगों पर अपना दबदबा जमा लिया। एक दिन जज साहब के सामने एक चोर एक फरियाद लेकर आया—

'हुजूर मैं चोर हूँ। मेरा पेशा ही चोरी करना है। कल रात को मैं सुकरू दर्जी के घर में चोरी करने लिए उतरा। उस कम्बख्त ने इतनी ऊँची दीवारें बना रखी हैं कि उसका डर बना रहता है। खैर मैं किसी तरह जान पर खेलकर कूद भी गया। पर आँगन के भीतर उसी दीवार में उसने बड़ी-बड़ी कीलें गाड़ रखी हैं जिन पर वह शख्स अपने कपड़े वगैरह फैलाता होगा। ऊँची दीवार से कूदने के कारण मैं उस कील में फँस गया और मेरी एक आँख जाती रही। अब बिना आँख के मैं अपना पेशा सुविधापूर्वक नहीं चला सकता हूँ—इसलिए उस कम्बख्त के घर से वह बेहूदी कीलें उखड़वाई जायँ, कीली गाड़ने वाले को सजा दी जाय और उसकी आँख निकलवाकर मुझे दी जाय ताकि मैं अपना पेशा सुचारु रूप से चला सकूँ।'

जज साहब चोर के तर्क से बहुत प्रभावित हुए। सुकुरू दर्जी अदालत में हाजिर हुआ। जज साहब ने उसका बयान माँगा। दर्जी ने कहा—

'हुजूर यह सब सच है। यह मेरे घर में अपनी मूर्खता से चोरी करने घुसा था। चूँकि मूर्खता से इसकी आँख गयी है, इसलिए अदालत इसे मूर्ख घोषित करे तथा यह चोरी करने की नीयत से गया था इसलिए इसके ऊपर चोरी करने का अपराध लगाया जाय।'

जज ने अपनी विद्वत्ता प्रदर्शित करते हुए दर्जी के तर्क को काट दिया और कहा—

'चोर ने अपने पेशे के सम्बन्ध में तुम्हारे घर में कूदने का प्रयास किया है। इस देश में हर व्यक्ति को अपना पेशा अख्तियार करने और उसका पालन करने की पूरी छूट है। यदि वह व्यक्ति यह प्रमाणित कर देता है कि यह खानदानी चोर है तो किसी घर में कूदने

का अधिकार इसके पेशे के अन्तर्गत इसको सहज ही मिल जाता है। इस प्रकार तुम्हारा यह आरोप अपने आप खण्डित हो जायगा। तुम्हारी कीलों की वजह से इसकी आँख गयी है। यदि तुमने कीलें गाड़ी थीं तो उसकी पूर्व सूचना कस्बे में सब के पास होनी चाहिये थी।'

इस सम्बन्ध में गवाहियाँ ली गयीं। चोर ने कई घरों से आदमी लाकर यह कहलाया कि वह खानदानी चोर है, उसके दादा ने अपने घर में ही कई बार चोरी की थी और इसका बाप एक संस्था का मैनेजर था जहाँ पर उसने खूब रुपया चुरा-चुराकर खाया था। जज महोदय ने इससे सिद्ध कर दिया कि वह खानदानी चोर है और उसे अपने पेशे के अन्तर्गत जो स्वतन्त्रताएँ और सुविधाएँ मिलनी चाहिये उसमें किसी घर में कूदने की सुविधा भी हो सकती है। दर्जी ने कीली गाड़ने के विषय में पूर्व जानकारी के सम्बन्ध में गवाहियाँ एकत्र करनी चाहीं, पर वह न हो सकीं क्योंकि बहुत से ऐसे लोग निकल आये जो यह कहते थे कि उन्हें दर्जी द्वारा अपने घर में कीली गाड़ने की पूर्व जानकारी न थी।

जज महोदय ने सारे मामले को बहुत ध्यानपूर्वक सुना, फिर अपना निर्णय गम्भीरतापूर्वक सुना दिया—

'चोर मूर्ख है यह सिद्ध है, क्योंकि यह बिना पूर्व जानकारी के दूसरे के घर में चोरी करने के लिए कूदता है। इस प्रकार के मूर्खतापूर्ण आचरण के लिए इसके ऊपर दस रुपया जुर्माना किया जाता है। जब तक यह दूसरों के घरों की पूरी जानकारी हासिल न कर ले यह पेशा चालू करने पर अदालत रोक लगाती है। और चूँकि वह दर्जी अपने घर में इतना बेखबर होकर सोता है, जब कि इसके घर में दूसरों के कपड़े रहते हैं, इसलिए दर्जी पर दस रुपया जुर्माना किया जाता है। इसकी वजह से उस चोर की आँख गयी है, इसलिए दर्जी की आँखें निकलवा कर चोर को दे दी जाय। हर गवाह को भी दस-दस रुपया

जुर्माना किया जाता है क्योंकि वे अपना काम छोड़कर दूसरे का काम देखते हैं।'

निर्णय सुनकर वादी, प्रतिवादी और गवाह सब त्राहि-त्राहि करने लगे। दर्जी तो रोने लगा। उसने कहा कि उसकी रोजी कपड़ा सिलने से ही चलती है। यदि आँख चली गयी तो उसकी रोजी खत्म हो गयी। दर्जी की बात सुनकर सब कस्बे वाले 'हूँ हूँ' करने लगे। दर्जी ने कहा कि कस्बे में एक शिकारी ठाकुर रहते हैं। वे एक आँख बन्द करके ही सदा बन्दूक चलाते हैं। यदि उनकी एक आँख निकाल भी ली जाय तब भी उनका कुछ हर्ज नहीं होगा। बल्कि उनको एक आँख बन्द करने की मुसीबत से सदा के लिए छुटकारा ही मिल जायगा। जज साहब इस सुझाव से बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने उस शिकारी की आँख निकलवाकर चोर को दे देने का प्रस्ताव मान लिया।

शिकारी ठाकुर बुलाया गया। आँख निकलवाने के पहिले जज साहब खुद उसका निशाना लगाना तथा उसकी एक आँख बेकार रहने की बात देख लेना चाहते थे। शिकारी ठाकुर बन्दूक लेकर खड़ा हुआ। उसने निशाना लिया और बन्दूक चल गयी। बन्दूक के चलते ही जज साहब कुर्सी से लुढ़ककर नीचे आ गये और कूच कर गये। गोली ने उन्हीं को पकड़ लिया।

कस्बे वाले मातम करने लगे। न्याय करते हुए न्यायमूर्ति की मृत्यु हो गयी। सब कस्बे वाले अपने भाग्य को कोसने लगे और दूसरे जज की तलाश में लग गये।

(**अमरीकी हास कथाओं से प्रेरित**)

कौन जीता

यूँ वह साहब कई चक्कर लगा चुके थे सो कल भी वे तशरीफ़ ले आए ! उनका यह ख्याल था कि वह मेरी जान का बीमा कर डालेंगे ! बात यह है कि मुझे अब इन जान बीमा वालों से बड़ी उलझन पैदा होती है। उनके पास ले दे कर हमेशा एक यही तर्क रहता है कि एक दिन आपको मरना है। जब कि मैं ऐसा कतई नहीं समझता ! अब तक जाने कितने बार बीमा करवा चुका लेकिन एक बार भी तो ऐसा नहीं हुआ !! एक बार तो सिर्फ़ एक महीने तक यही करवाता रहा। लेकिन सब बेकार !

अब की मैंने सोचा कि इनको इन्हीं की तरह छकाना चाहिए ! अब की मैंने उनसे बातचीत करने में बड़ी दिलचस्पी ज़ाहिर की और हर तरह से उन्हीं की योजना को प्रोत्साहन देता रहा ! आखिरकार वह मेरे पास एक लम्बा प्रश्न-सूचीपत्र छोड़ कर चले गए जो मुझे उस बीमा कम्पनी के लिए भरना पड़ता ! मैंने भी सोचा कि अगर कम्पनी

को मेरे जीवन के बारे में सारी जानकारी करनी ही है तो फिर मैं भी क्यों न पूरी तरह से जानकारी दूँ। यही सोचकर सामने की टेबुल पर मैंने वह प्रश्न-पत्र फैला दिया और कलम लेकर हर सवाल का जवाब मरने बैठ गया जो मुझे हमेशा के लिए इस बीमा के योग्य समझे जाने का संदेह मिटा सकते !

सवाल—आपकी उम्र ?

जवाब—सोच नहीं पा रहा हूँ !

सवाल—सीने की नाप ?

जवाब—१६ इंच !

सवाल—सीने फुलाने पर नाप ?

जवाब—१६॥ इंच !

सवाल—लम्बाई ?

जवाब—छः फुट पाँच इंच ! लेकिन जब चौपाया हो जाता है तो कम हो जाती है।

सवाल—क्या आपके बाबा की मृत्यु हो गई है ?

जवाब—करीब-करीब !

सवाल—मृत्यु का कारण ?

जवाब—मिरगी आती थी !

सवाल—क्या बाप की मृत्यु हो चुकी है ?

जवाब—दुनियाँ के लिए ज़रूर !

सवाल—बाप का घर ?

जवाब—मेसाचुस्टेस !

सवाल—आप को क्या-क्या बीमारी रही है ?

जवाब—बचपन में : टी० बी०, कोढ़ और जलोदर !
जवानी में : कुकुर खाँसी और न्यूमोनियाँ !

सवाल—कोई भाई ?

जवाब—तेरह। लेकिन लगभग सब मर रहे हैं।

सवाल—आप में कोई ऐसी आदतें हैं जिनसे आप की समझ में उम्र घट सकती है ?

जवाब—जी हाँ, मैं शराब पीता ही हूँ। सिगरेट के बिना जीना असंभव है। कोकीन और अफीम भी चोरी छिपे इस्तेमाल करता हूँ ! कसरत से मुझे नफ़रत है।

गरजे कि धीरे-धीरे करके मैंने उस पूरे फार्म को भर डाला और आखीर तक पहुँचते-पहुँचते मेरा दृढ़ विश्वास हो गया कि अब की हज़रत पटकनी खा गए ! और इसी विश्वास के बल पर मैंने तीन महीने का प्रीमियम चेक काट कर इस फार्म के साथ नत्थी करके भेज दिया। मैं जानता था कि दस ही पाँच दिन में मेरा चेक सही सला-मत मुझे मिल जायगा !! और हफ्ते भर में ही मुझे एक लिफ़ाफ़ा उस कम्पनी का मिला लेकिन इसमें एक खत था :

प्रिय महोदय—आपका पत्र और चेक दोनों मिले। आज के आधुनिक युग के औसत जीवन को देखते हुए, हमें बड़ी प्रसन्नता के साथ लिखना पड़ता है कि आप का जीवन बीमा कम्पनी ने औव्वल दरजे के खतरे वाले वर्ग में सहर्ष स्वीकार कर लिया है—कृपया बधाई स्वीकार करें !

(स्टीफन लीकाक का भावानुवाद)
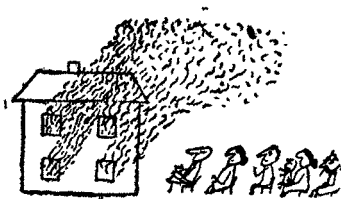
जादूगर का तमाशा

देवियों और सज्जनों,

अभी मैंने आपको जो जादू दिखाया था वह बिल्कुल बाएँ हाथ का खेल था। अब देखिए उसमें से एक सुनहली मछली निकाल कर दिखलाता हूँ। एऽऽ छूमन्तर! 'जादूगर ने जैसा कहा वैसा करके दिखला दिया।' हाल में बैठे हुए लोग कह रहे थे, 'वाह!! क्या खूब!! यह कैसे कर देता है।' सामने की कुर्सी पर बैठे हुए लाल बुझक्कड़ अपने पास बैठे हुए लोगों से बुदबुदाये, 'यह कुछ नहीं, यह तो इसकी आस्तीन में छिपी हुई थी।'

लोग लाल बुझक्कड़ की सतत-परदा-फ़ाशी-बुद्धि बहुत से प्रभावित हुए। 'ठीक, ठीक है! जरूर इसकी आस्तीन में रहा होगा!!' की ध्वनि हाल में चारों तरफ़ गूँजने लगी।

जादूगर ने कहा......

'अब मैं आपको हिन्दुस्तानी चूड़ियों का जादू दिखलाता हूँ।

आप देख रहे हैं सब चूड़ियाँ अलग हैं। अभी एक मिनट में सब को जोड़ दूँगा। एऽऽ छूमन्तर!' जादूगर ने फिर हाथ घुमाया।

हाल के अन्दर लोगों की हतबुद्धिमता गूँज ही रही थी कि लाल बुझक्कड़ बुदबुदा उठे....आस्तीन में जरूर इसने चूड़ियों का दूसरा सेट छिपा रक्खा था।

लाल बुझक्कड़ के स्वर से फिर सब लोग प्रभावित हो गये, 'जरूर इसने आस्तीन में छिपा रक्खा होगा।'

जादूगर के माथे पर झल्लाहट उभर आई थी। वह कहने लगा, 'इस बार मैं आपको बहुत मजेदार खेल दिखलाऊँगा। आप अपना हैट दीजिए। मैं उसमें से अण्डे निकाल दूँगा। आप कोई साहब हैट देंगे?......धन्यवाद। ए ऽऽ छूमन्तर।' हैट में से उसने १७ अण्डे निकाल दिये। पैंतीस सेकेण्ड तक दर्शक सोचते रहे कि इस बार उसने कमाल कर दिया। तब तक अगली सीट पर बैठे लाल बुझक्कड़ ने सबकी आश्चर्य भावना का शमन करते हुए, फ़रमाया, 'अरे यह कुछ नहीं है। इसने आस्तीन में एक मुर्गी छिपा रक्खी है।' इतना सुनना था कि लोग कहने लगे, 'इसने आस्तीन में कई मुर्गियाँ छिपा रक्खी हैं।' और अण्डे का जादू भी ध्वस्त हो गया।

इस तरह क्रम चलता रहा। लाल बुझक्कड़ की बुदबुदाहट ने लोगों को अच्छी तरह समझा दिया कि उसकी आस्तीन में न सिर्फ चूड़ियाँ, मुर्गियाँ और मछलियाँ ही हैं बल्कि उसकी आस्तीन में ताश की गड्डियाँ, चूड़ियाँ, विलायती खरगोश, रुपये आदि सभी चीजें भरी हैं।

देखते-देखते जादूगर की इज्जत धूल में मिली जा रही थी। शाम होते-होते उसने पूरी शक्ति लगाकर अन्तिम प्रयत्न किया।

'देवियों और सज्जनों, अन्त में आपको प्रसिद्ध जापानी जादू दिखलाता हूँ। यह तिपरेरी के मूल निवासियों का जादू है।' लाल

बुझक्कड़ की तरफ पलट कर वह बोला, 'श्रीमान ज़रा-सा अपनी सोने वाली घड़ी दीजिएगा।' घड़ी मिल गई।

'अब मैं आपसे इजाजत चाहता हूँ कि इस घड़ी को इस खरल में डालकर टुकड़े-टुकड़े कर दूँ।'

लाल बुझक्कड़ ने कुछ सोचकर इजाजत दे दी! घड़ी को खरल में डालकर जादूगर ने हथौड़ा उठाया। तड़ाक की आवाज हुई।

'अपनी आस्तीन में इसने उसे सरका दिया है', लाल बुझक्कड़ फिर बोले। जादूगर ने आगे कहा, 'सरकार! अब जरा अपना रूमाल दीजिए। धन्यवाद। क्या मैं इसमें छेद कर सकता हूँ? धन्यवाद। अब आप सभी लोग देखें इसमें कोई धोखाधड़ी का काम नहीं है। आप सभी लोगों को छेद दिखाई पड़ रहा होगा।'

लाल बुझक्कड़ का चेहरा चमक गया। इस बार वे भेद का कुछ पता न लगा पाये।

'और अब जनाब अपनी रेशमी हैट दीजिए, मैं जरा इसको गुमेचना चाहता हूँ। धन्यवाद।'

जादूगर ने हैट को ऐसा गुमेचा की वह पहचानने के लायक भी नहीं रहा।

इस तरह जादूगर ने उनकी कालर और टाई माँगकर मोमबत्ती से जला दिया और चश्मा भी लेकर दो टूक कर डाला।

लाल बुझक्कड़ बुदबुदाते थे। कुछ सूझ नहीं रहा था। बोले, 'कुछ समझ में नहीं आ रहा है कि यह हथकण्डा है क्या?'

दर्शकों में सन्नाटा छा गया था। अब जादूगर फिर खड़ा हुआ और लाल बुझक्कड़ की तरफ देखते हुए बोला, 'देवियों और सज्जनों, आपने देखा कि मैंने इन सज्जन की इजाजत से इनकी घड़ी तोड़ दी। कालर, टाई जला दिये, हैट का नास कर दिया और चश्मा भी ठिकाने लगा दिया। अब ये इजाजत दें तो मैं इनके कपड़े पर लाल, हरा, पीला पेंटिंग कर दूँ और इनका मुँह भी रँग दूँ। शायद इससे

आप लोगों को अधिक मनोरंजन होगा लेकिन अगर ये नहीं चाहते तो तमाशा यहीं खतम होता है।'

और स्टेज पर परदा गिर गया। आरकेस्ट्रा बजने लगा! दर्शक खड़े हो गए। इस बार वे समझ गये कि कुछ खेल ऐसे भी होते हैं जो जादूगर की आस्तीन से नहीं निकलते।

(लीकॉक की कहानी पर आधारित)
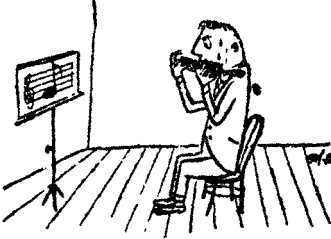
साहित्य संपादक

काफी दिन हुए जब मैं करीब २४ बरस का रहा होऊँगा, मैं एक पत्रिका में पशुविज्ञान पर कुछ छोटी-मोटी ज्ञातव्य बातें लिखा करता था। एक दिन बिना किसी चेतावनी के मैं उस पत्रिका के साहित्य-संपादक की जगह पर अचानक चढ़ा दिया गया। वह इसलिए कि उस पृष्ठ की देखभाल के लिए एक सुसंस्कृत दिमाग की आवश्यकता समझी जाती थी।

मैं इस आदर से बहुत घबरा गया। बात यह है कि तब तक मैंने सिर्फ एक ही किताब कवर से कवर तक पढ़ी थी और वह थी चन्द्रकांता संतति। मैंने आफिस के आसपास खोजबीन की! इसके बावजूद, कि उस पृष्ठ की देखभाल के लिए एक सुसंस्कृत दिमाग की आवश्यकता थी मैंने यही समझा कि मैं गलती से इस जगह पर आ गया हूँ। लेकिन मुझे बाद में पता चला कि मैनेजर साहब को यह विश्वास था कि मैं इलाहाबाद यूनीवर्सिटी में पढ़ा हूँ और मैंने आधुनिक युग पर विशेष खोज की है।

वह एकदम तो सही नहीं थे। बात यह है कोशिश तो मैंने जरूर की थी पर पहले साल एक महिला से साइकिल लड़ गई और मैं निकाल दिया गया। दूसरे साल भी कुछ ऐसा ही वैसा रहा...तीसरे साल मैंने वही चीज दुहराना ठीक न समझा। खैर, बुद्धिमत्ता तो यही कही जाती है कि जब मौका आए चूकना नहीं चाहिए—और जनाब मैं चूका नहीं।

और अगले दिन सुबह मैं 'लिटरेरी एडीटर' की कुर्सी पर धमका हुआ बैठा था। मेरे पहले वाले एडीटर महोदय मेज और उसकी दराजें एकदम साफ छोड़ गये थे। सिर्फ एक दराज में कुछ हाजमें की गोलियाँ और दूसरे में एक जोड़ी फटा मोजा पड़ा रह गया था।

खैर, किताबों के पार्सल आने शुरू हुए। मैंने खोला और बड़ी सावधानी से उनकी लिस्ट बनाई। फिर मैं अपनी कुर्सी पर जरा जम कर बैठ गया। जाने क्यों मुझे इस तरह से बैठना अच्छा लगा।....अब आगे क्या होगा इसका मुझे पता नहीं लगा लेकिन मुझे इस तरह बैठना बड़ा जम रहा था।

लेकिन जब मामला आगे चलने लगा तो बहुत जल्दी ही उसके खतम होने की नौबत भी आ गई। पुस्तकों की समीक्षा करने वाले आने लगे। मैं बहुतों को सूरत-शकल से तो जानता ही था। कुछ काफी मेहनती थे; कुछ बहुत योग्य किस्म के नालायक थे—यानी कोई दूसरा कार्य उन्हें नहीं मिलता था और कुछ ऐसी नौकरियों में थे जिन्हें काम कम, छुट्टी ज्यादा मिलती रहती है।

उन्होंने मुझे बधाई देते हुए नमस्कार किया। सबके पास चमड़े के छोटे-छोटे थैले थे।

'सुनिए....अब जब तक यहाँ सब ठीक-ठाक हो जाय....आप लोग अपनी अपनी चीजें मुझे....। देखिये एक ही तरफ लिखियेगा।' मैं कह रहा था और वे सब किताबों पर टूटे हुए थे।

जब तक मैं उन किताबों की लिस्ट बनाता तब तक वे किताबें

उनके थैले में जगह पा गईं थीं और जब वे गये तो मुझे हाँफा आ रहा था।

मैंने दफ्तर के चारों तरफ देखा। इतनी देर में चारों तरफ फटे कागज, तागे, कुछ ईसाई मत के प्रचार के पर्चे और 'कुत्तों की शिक्षा-दीक्षा' नामक पुस्तक के अलावा सब कुछ साफ हो चुका था—एकदम साफ !!

पहली सुबह का काम तो बहुत सफाई से निकल गया था। मुझे लगा कि अब यहाँ काफी आरामदेह जिंदगी रहेगी। इतने में ही बुड्ढा रामलाल खाँसता हुआ दरवाजे की आड़ में दिखाई पड़ा। रामलाल इसी दफ्तर में काम करता था। कभी कुछ और कभी कुछ। कभी विज्ञापनों को देखता था और कभी अपनी टोपी ठीक किया करता था। रात में वह यहीं प्रेस में पड़ा रहता था।

मैंने कहा—'कहो रामलाल ? क्या बात है ?'

वह अन्दर आ गया—'वह....वह....वह किताबें....आपके पहले वाले सज्जन मुझे हमेशा किताबें दिया करते थे....' वह उस कमरे की हालत पर गौर कर रहा था।

'किताबें ?....मुझे दुख है वह तो सब चली गईं....!' मैं बोला, 'मुझे पता नहीं था कि आप आने वाले हैं....बात यह है कि मैं तो अभी-अभी काम के लिए यहाँ आया हूँ।'

'हूँ' कह कर वह बाकी बचे बंडलों में से एक को झाड़ने लगा। और उसमें से 'द्रविड़ों की स्थापत्य कला' नामक पुस्तक निकाली.... 'ओह नौ रुपये !....ठीक है'। उसने अपने जेब में वह किताब ठूँस ली और दरवाजे की ओर बढ़ा।

मैंने कहा—'माफ कीजिएगा....लेकिन आप इस स्थापत्य कला के बारे में कुछ जानते हैं क्या ?'

कुछ नाक-भौं सिकोड़ कर उसने कहा—'नहीं !....लेकिन क्यों ?'

मैंने कहा—'आप समीक्षा के लिए ले जा रहे हैं न ?'

'नहीं'—उसने जोर देकर कहा—'मैं इसे बेचने के लिए ले जा रहा हूँ। आपके पहले जो थे वह मुझे हमेशा दस रुपये की किताब दिया करते थे।'

इतना कह कर उसने 'कुत्तों की शिक्षा-दीक्षा' पुस्तक भी अपने कब्जे में कर ली।....और वह दरवाजे के बाहर था।

मैं चुपचाप बैठ गया। कैंटीन व्याय किशोरी आया तो मैंने उससे सब कुछ पूछा। उसने कहा—'सरकार बाताई है कि कोई एक्को टका तो देत नाहीं। फिर ई लोग का करें। वहि कोने पै 'शर्मा' जी के हियाँ बेच देत हैं।....

मैंने कहा—'अच्छा अच्छा। भाग जाओ....मुझे लिखने-पढ़ने दो!'

सहसा एक पार्सल फिर आया। बड़ा था। 'शरत्-साहित्य' की सारी पुस्तकें थीं। हर एक के दाम तीन-तीन, चार-चार ! मैंने अब तक शरत् साहित्य की पुस्तकें नहीं पढ़ी थीं। बात यह है कि मैं ऐसी घरेलू विज्ञान की पुस्तकें पढ़ना बहुत पसन्द भी नहीं करता। लेकिन एक-एक किताब तीन-तीन और और चार-चार की !

मैं नहीं जानता कि उसके बाद जो कुछ हुआ वह हुआ कैसे ? हुआ यह कि मैं शरत्-साहित्य को फिर से पैकेट में लपेटने लगा। मेरा दिल धड़क रहा था। जिन्दगी में पहली बार कुछ ऐसा काम करने जा रहा था जिनके बिल्कुल कानूनी होने में संदेह था।

सीढ़ी से कुछ उतर कर फिर वापस कमरे में लौटा। दराज में से एक कागज निकाला और लिखा—

'शरत्-साहित्य का यह अनुपम प्रकाशन प्रत्येक पुस्तक प्रेमी के लिये एक अमूल्य निधि है। टाइप बडा साफ है और गेटअप अच्छा है। भाषा और शैली के लिये कोई प्रशंसात्मक शब्द शेष नहीं हैं।'

इसके बाद मैंने वह कागज ट्रे में डाल दिया कि वह प्रेस में चला जाय। दस मिनट बाद शर्मा ब्रदर्स की दूकान में से बाहर निकल रहा

था। मेरी जेब में बारह रुपये थे और उनके साथ ही शर्मा जी का धन्यवाद भी।

उसी शाम को ६ बजे फोन की घंटी बोली। प्रधान सम्पादक का टेलीफोन था। मैं घबरा गया। फिर उठाया यही सुनने के लिये कि 'दिन भर आप कहाँ थे?'

'मैं जरा बाहर गया हुआ था!'

'अच्छा अच्छा!...वह शरत्-साहित्य की पुस्तकें आपके पास....'

'आई होंगी'....मैंने मन में कहा।

'आई होंगी', उन्होंने कहा।

'कैसा शरत्-साहित्य?' मैंने कहा....'मेरे पास तो नहीं आया।'

'अच्छा?...आज तक तो आ जाना चाहिये था। बहरहाल परसों तक मिल ही जायगा। डा० वर्मा के पास उन्हें आप भिजवा दीजियेगा। वे शरत्-साहित्य पर एक फुल पेज फीचर हमें देंगे!'

और मैं दौड़ता हुआ दफ्तर पहुँचा। ट्रे में से वह कागज निकाल कर फाड़ा। फिर शर्मा ब्रदर्स की दूकान पर पहुँचा।

'शर्मा जी! क्या वह शरत-साहित्य का पार्सल मुझे वापस कर दीजियेगा?'

'वह तो बिक गया।' बड़े संतोष से उन्होंने कहा।

'किसने?' मैंने कहा, 'किसने खरीदा है? जल्दी बोलिए!'

'मिस्टर घोष!'

'चुप रहिये। साफ बतलाइये कौन है?' मैंने तेज होकर कहा।

'मिस्टर घोष। यूनिवर्सिटी होस्टल में हैं।....उनके....'और मैं मिस्टर घोष की तरफ दौड़ पड़ा। मिस्टर घोष बहुत खास तरीके से ७ फीट की ऊँचाई प्राप्त कर चुके थे। कमरे में चाय पी रहे थे। पीछे की मेज पर शरत्-साहित्य का सेट रक्खा हुआ था।

'मिस्टर घोष....मुझे ये किताबें चाहिये।' मैं बोला।

मिस्टर घोष मुस्कराये, 'मुझे कैसे ढूँढ़ लिया।....नमस्कार।'

'इससे आपको कोई बहस नहीं कि आपको कैसे ढूँढ़ लिया।.... आप कितना चाहते हैं, इन किताबों के लिये ?'

मिस्टर घोष ने काफी बड़ा मुँह खोल कर पूरा होठ भीतर कर लिया।

'तीस टका।....आई मीन थार्टी रूपीज़।....वैरी गूड बूक्स।' वे बोले।

'तीस रुपये ?' मैं चकित था।....'सुनिये....मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि आपने कितने पैसे इसके लिये दिये हैं ?'

'पैतालिश टका।'....जरा सख्ती से वे बोले।

अन्त में किसी तरह वे तीस रुपये पर राजी हुए।

मेरे चेक पर वह कुछ संदेहात्मक स्वर में बोले—'मैं आपका ट्राश्ट करता हूँ थोड़ा बहुत।....' उसके बाद मेरे हाथ वह एक कम्बल भी बेचने लगे। मैंने किताबों का बंडल उठाया और भाग खड़ा हुआ।

डा० वर्मा ने सचमुच काफी अच्छा 'मैटर' लिखा। मुझे ताज्जुब हुआ कि इतना कुछ वे लिख कैसे सके ? लेकिन था बहुत अच्छा।

कुछ दिन बाद मैं फिर शर्मा ब्रदर्स की दूकान की दूसरी पटरी पर से निकला जा रहा था। डा० वर्मा को पुस्तकों का एक बंडल लिये हुए शर्मा ब्रदर्स की दूकान में कोने वाले दरवाजे से घुसते हुए देख कर मुझे सचमुच बहुत ताज्जुब हुआ।

थोड़ी देर में मुझे और भी अचरज हुआ, मिस्टर घोष को बाहर निकलते देख कर। उनके हाथ में वही डा० वर्मा वाला पार्सल था।

'अरे शूनिये! शूनिये !...महाशाय !....' मुझे देख कर उन्होंने पुकारते हुआ कहा।....'आपनी शरत्-साहित्य खरीदते हैं न ?....वेरी नाइस....शेयी बेश भालो....बड़ा चीप ?....बीश टका !! शिरिफ बीश टका....कह मेरी तरफ बंडल लेकर दौड़े।

मैं खड़ा हो गया—'मुझे अफसोस है मिस्टर घोष' मैं कह रहा था—'अब मैं उस व्यापार में बिल्कुल नहीं हूँ।'

और आप सच जानिये कि जो कुछ मैंने कहा था वह एकदम सही होने का दावा रखता था !

(पैट्रिक केम्पबेल की एक अंग्रेजी कहानी पर अंशतः आधारित)
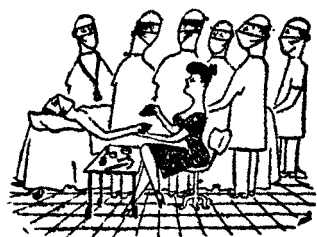
देह दर्शन उर्फ स्वास्थ्य रक्षा

विज्ञान की उन्नति हमारे लिए एक अत्यन्त आश्चर्य की वस्तु है। हर व्यक्ति इसके लिए बिना गर्व किए रह नहीं सकता। जी हाँ, मैं स्वीकार करता हूँ कि मैं भी इसके लिए गर्व करता हूँ। जब किसी से मैं इसके बारे में बातें करने लगता हूँ (यानी उससे जो इसके बारे में मुझसे कम ही जानता होगा!) उदाहरण के लिए जैसे बिजली के बारे में ही बातें करने लगता हूँ, तो मुझे अपना उत्साह ऐसा लगने लगता है कि जैसे बिजली के आविष्कार का सारा दायित्व मेरा ही है!! खैर जहाँ तक प्रेस, हवाई जहाज और वैक्यूम हाउस क्लीनर आदि का प्रश्न आता है, वहाँ मुझे इस बात का खासा भरोसा नहीं रहता कि वह आविष्कार भी मैंने ही किया होगा। मेरा ख्याल है कि सभी उदारमना व्यक्ति ठीक मेरी ही तरह सोचते होंगे!

बहरहाल, मैं इस विवाह में पड़ना ही नहीं चाहता! मैं तो विज्ञान की प्रगति के बारे में बातचीत करना चाहता था! आप चाहें तो समझ

सकते हैं कि उसमें कुछ अत्यन्त विस्मयजनक चीजें हैं। मानवता का हर प्रेमी या यूँ कहिए कि किसी भी लिंग का जीव क्यों न हो, जब पलट कर विज्ञान की तरफ देखेगा तो उसकी छाती का दाहिना भाग अपने भरसक फूल उठेगा !

जरा सोचिए ! अब से सौ साल पहिले न कीटाणु थे, न फूड-प्वाइज़निंग थी, न डिप्थीरिया था और न एपेंडिसाइटिस था ! रेबीज़ (जल-भीति) को लोग बस ऐसे ही थोड़ा-बहुत पहचानते भर थे ! यूँ देखिए तो यह सब विज्ञान की देन हैं ! यहाँ तक कि अब सोरियासिस, एरोटाइटिस, ट्राइपेनोसोमिआइसिस जिन्हें सिर्फ कुछ ही लोग जानते होंगे और जनसाधारण की पहुँच से जो बिल्कुल बाहर था, वह भी अब घर-घर में घुस गया है।

या आप विज्ञान की व्यावहारिक प्रगति की ओर ही आइए। सौ साल पहिले लोग सोचते थे कि बुखार उतारने के लिए खून निकालना पड़ता है; पर अब हम निश्चय ही यह जानते हैं कि ऐसा नहीं करना चाहिए। सत्तर साल पहिले सोचते थे कि बुखार कुछ आरामदायक दवाइयों के सहारे काबू के किया जा सकता है—अब समझते हैं कि ऐसा नहीं हो सकता। अभी तीस साल पहिले तक यह सोचा जाता था कि बुखार को हल्के भोजन और बर्फ की पट्टियाँ रखकर उतारा जा सकता है। अब इसके बारे में भी वे एक मत हैं कि ऐसा निश्चित रूप से नहीं हो सकता !

इस उदाहरण से ही यह पता चल सकता है कि बुखार उतारने के मामले में कितनी प्रगति हुई है। किन्तु अकेले यही नहीं, और दिशा में प्रगति सराहनीय हुई है। गठिया को ही लीजिये। अभी कुछ ही बरस पहले गठिया वाले मरीज दवा के रूप में अपनी जेब में आलू लेकर चलते थे; पर अब ! अब तो डाक्टरों ने यह छूट दे दी है कि वे कुछ भी लेकर चल सकते हैं। चाहें और कर सकें तो वे अपनी जेबों में तरबूज लेकर चलें। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। या आप

मिर्गी का ही इलाज देखिए। पहले जमाने में लोग सोचते थे कि इसका दौरा होने पर सबसे पहले मरीज का कालर ढीला कर दीजिये ताकि वहीं खुल कर साँस ले सके; आजकल इसके विरुद्ध डाक्टर यह सोचते हैं कि मरीज का कालर बन्द कर देना चाहिए ताकि साँस अच्छी तरह घुट सके।

औषधि विज्ञान के क्षेत्र में बस एक ओर निश्चित रूप से उन्नति नहीं हुई—वह है डाक्टर बनाने की अवधि। पुराने जमाने में दो साल कालेज में काटकर हर आदमी डाक्टर हो जाता था। कुछ लड़के तो और भी पहले निकल आते थे पर आजकल डाक्टर बनने के लिये हर जगह पाँच से आठ साल तक लगते हैं। यह माना जा सकता है कि आजकल के नवजवान हर साल काफी मूर्ख और आलसी होते जा रहे हैं। लेकिन अगर यह भी मान लिया जाय तो भी यह कितना अजीब है कि जो विद्या आठ महीने में आती थी उसके लिये आठ साल सीखना पड़ता है।

खैर जाने दीजिये। कहना मैं यह चाहता हूँ कि आधुनिक डाक्टर का काम बहुत सरल है तथा वह केवल दो सप्ताह में अपनी शिक्षा पूरी कर सकता है।

मरीज डाक्टर के कमरे में घुसता है।

'डाक्टर साहब बड़ी जोर का दर्द है।'

'कहाँ है वह।'

'यहाँ।'

'खड़े हो जाओ', डाक्टर कहता है, 'अपने दोनों हाथ ऊपर उठा लो।'

उसके बाद डाक्टर मरीज के पीछे चला जाता है और उसकी पीठ पर एक कस कर धौल जमाता है।

'कुछ लगता है?'

'हाँ,' मरीज कहता है।

उसके बाद सहसा डाक्टर घूम कर आगे आ जाता है और दिल के पास फिर एक जमाता है। फिर पूछता है !

'कुछ लगता है ?'

मरीज धम्म से हास पास पड़े हुये सोफे पर जा गिरता है।

दस तक गिनती गिनते हुये वह कहता है—'खड़े हो जाओ।'

मरीज खड़ा हो जाता है। डाक्टर थोड़ी देर तक उसे मौन देखता रहता है। और फिर उसके पेट पर ऐसा हाथ जमाता है कि मरीज के हवास गुम हो जाते हैं। डाक्टर अपना मुँह गम्भीर बना कर खिड़की के पास चला जाता है और उस दिन का ताज़ा अखबार पढ़ने लगता है। उसके बाद वह पलट कर जैसे मरीज से नहीं बल्कि अपने से ही बड़बड़ाता है।

'हूँ। कुछ टिम्पैनम का टच है। और हल्का एनिस्थीशिया भी है।'

'हाँ ?' घबड़ा कर मरीज पूछता है। 'तो अब क्या करना होगा डाक्टर साहब ?'

'भई आपको बिल्कुल चुप रहना होगा। चुपचाप बिस्तरे पर पड़े रहिए और चुप रहिए।'

दरअसल डाक्टर को तनिक भी नहीं पता कि बीमारी क्या है। लेकिन वह यह तो अच्छी तरह जानता है कि यदि यह बिस्तरे पर पड़ा रहा तो या तो यह चुपचाप आराम करते हुए अच्छा हो जायगा या फिर शान्ति के साथ मौत के घाट उतर जायगा।

इस बीच अगर डाक्टर बराबर आता रहा और उसी तरह से ठोकाई-पिटाई करता रहा तो शायद वह अपने मरीज से यह कबुलवाने में समर्थ हो जायगा कि उसे हुआ क्या है। भयान्वित मरीज डाक्टर से हाथ जोड़कर पूछता है—'और डाक्टर साहब खाने के बारे में ?'

इस प्रश्न का जवाब अक्सर अलग-अलग होता है। यह इस बात पर बहुत निर्भर करता है कि डाक्टर महोदय की अपनी दशा क्या है।

हो सकता है कि उन्होंने काफी देर से खाना न खाया हो। अगर वह बहुत भूखे हुए तो आप से कहेंगे, 'खूब खाइये। जरा भी मत घबराइए। जो मन आये—मांस, अन्डे तरकारी, स्टार्च, सीमेन्ट जो मन आये सब खाइये।' लेकिन अगर डाक्टर महोदय अभी ही अपना भोजन समाप्त करके उठे होंगे और गले तक खाना भरा होगा तो वह बहुत ही निषेधात्मक स्वरों में कहेंगे, 'नहीं भाई, खाना-वाना बिलकुल नहीं खाइये। एक ग्रास भी नहीं। खाने के मामले में ज़रा सी कमी कर जाने से कोई खास नुकसान नहीं होगा। खाना जाने ही दीजिये।'

और पीने के बारे में ?

डाक्टर का दूसरा जवाब होगा। 'हाँ, कुछ पी लीजिये सोडा, नीबू, जवाब और ह्विस्की....?' लेकिन डाक्टर साहब शायद कल रात डाक्टरों की किसी सभा में थे। हो सकता है वह बहाना उन्हें मरीज को नशीली चीजों के इस्तेमाल से पूरी तरह रोके।

जाहिर है कि इस तरह का इलाज मरीज में कोई खास विश्वास नहीं जमा सकता क्योंकि यह सारी बातें अपने आप में काफी साफ हो जाती हैं। पर आजकल इस तरह के इलाज को गूढ़ रूप देने के लिये परीक्षा-लेबोरेटरी की सहायता ली जाती है। अब तो कोई बीमारी हो डाक्टर महोदय कोई न कोई हिस्सा काट कर उसे परीक्षण के लिये भेज देते हैं। मरीज के बालों का एक गुच्छा उन्होंने काटा और उस पर लिख दिया 'स्मिथ महोदय के बाल, अक्टूबर १६१०', उसके बाद उन्होंने कान का निचला हिस्सा काटा, कागज में लपेटा और उस पर लेबिल लगाया 'मिस्टर स्मिथ का निचला कानांश अक्टूबर १६१०', उसके बाद हाथों में कैंची लेकर वह मरीज को अच्छी तरह से ऊपर से नीचे तक देख डालते हैं और अगर किसी दूसरे हिस्से पर उनकी तबियत आ गई तो उसे भी काट कर कागज की पुड़िया बना देते हैं।

यही चीज है जो मरीज के अन्दर आत्मगौरव और अपने महत्व की भावना भर देती है।

पट्टी बँधा हुआ मरीज अत्यन्त उत्साहित और प्रभावित होकर अपने दोस्तों को बताता है....'डाक्टर का ख्याल है कि शायद प्रागनोसिस एनिस्थीशिया का कुछ टच हो सकता है लेकिन उन्होंने मेरा कान न्यूयार्क भेज दिया है। अतड़ी का कुछ भाग बाल्टीमूर गया और मेरे बालों एक गुच्छा सभी औषधि विज्ञान-पत्रों के सम्पादकों के पास भेजा गया है। अब देखिये जब तक उनका कोई जवाब न आ जाय तब तक मुझको चुपचाप पड़ा रहना है। बस यही आध-आध घन्टे पर मुसम्मी और अनार का रस पीते जाना है।' इतना कहते-कहते वह अपने बिस्तरे पर तकियों का सहारा लेकर धीरे से लेट जाता है।

और, और आपको यह सब कितना अजीब तमाशा लगता होगा ?

आप और हम दोनों ही इसे जानते हैं। लेकिन जानते हुए भी जब जरा-सा दर्द हुआ कि हवाई गति से डाक्टर के दरवाजे पर दौड़ पड़ते हैं। और मैं....? खैर मैं तो यहाँ तक पसन्द करता हूँ कि घन्टी लगी हुई एम्बुलेन्स गाड़ी ही आकर मुझे हर बार अस्पताल ले जाया करे। सच मानिए उसमें बड़ा आराम मिलता है।

—(**स्टीफन लीकॉक की एक रचना का छायानुवाद**)
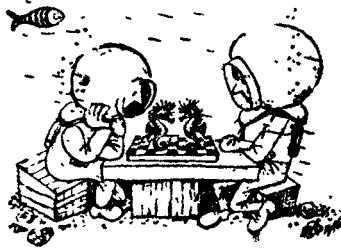
स्वास्थ्य और आराम

अभी-अभी एक बहुत बुरा समाचार मिला है। एक प्रमुख चिकित्सक डाक्टर जी० डब्लू० ब्राइल ने कहा है--यदि आदमी अपने स्वास्थ्य का ध्यान रक्खे तो वह ८० वर्ष तक डट कर काम कर सकता है। यह ब्राइल महोदय भी क्या आदमी हैं!

पहली बात तो यह है कि आदमी अपने स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान दे और डट कर काम करे यह दोनों कैसे हो सकता है। बिना अपनी हेल्थ चौपट किये डट कर काम करना हमें तो साहब, किसी ने नहीं बताया।

फिर आखिर अस्सी वर्ष तक काम पर डटे ही रहने का ऐसा भी क्या मोह? मैं ऐसे बहुत से लोगों को जानता हूँ जो बिना नागा अपने काम या दफ्तर पहुँचते हैं। लोग समझते हैं कि उन्हें काम से बड़ा प्रेम है। लेकिन उसके पीछे बात दूसरी रहती है। उनके घरों में जरूर कोई-न-कोई उनके सिर पर डंडा लिये सवार रहता है।

कोई भी आदमी जो डाक्टर ग्राइल के शब्दों में अपने स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान देता होगा वह पचास तक पहुँचते-पहुँचते अपने काम से खासा उकता चुका होगा। आगे अगर वह फिर भी काम करता है तो उसका काम के प्रति मोह समझिये या फिर उसकी जरूरतमंदी।

मैं जानता हूँ कि काम करना बल्कि काम पर डटे रहना अपनी घबराहट और दिमागी अव्यवस्था का द्योतक है। कहाँ आराम, स्वास्थ्य का पूरा ध्यान और कहाँ अस्सी वर्ष काम। दफ्तर में दूसरे लोग उस अस्सी वर्ष वाले काम-काजी बुड्ढे के बारे में क्या राय बनायेंगे, यह भी एक सोचने वाली बात है।

सब से अच्छी बात तो यह है कि आप इतना पैसा कमा लें कि सत्ताइस वर्ष की उम्र के बाद आपको काम करने की जरूरत ही न हो। अगर यह सम्भव न हो तो जब भी आप पायें कि आप के पास काफी पैसा हो गया है, आप फौरन ही काम बन्द कर दीजिये—चाहे किसी दिन सवा ग्यारह या साढ़े बारह बजे दिन में ही सहसा आपको यह शक्ति प्राप्त हो जाय। तभी आप के पास अपने स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान देने के लिए समय होगा। अगर आप को काम ही करना है तो फिर अच्छा स्वास्थ्य रखने का विचार ही एकदम बेतुका है। समझे?

—राबर्ट बेंचले की रचना पर आधारित

कृषि-पत्रिका सम्पादक

कृषि पत्रिका का सम्पादन अपने हाथ में लेने के पहिले मेरे मन में भी कुछ संदेह थे। नौसेना की कहानी अगर किसी पहाड़ी के हत्थे चढ़ जाये तो उसके मन में कुछ-न-कुछ उहापोह तो मचेगा ही। पर मेरी स्थिति ऐसी थी कि उस समय सिवा तन्ख्वाह के मुझे और-कुछ सूझता ही न था। उस पत्रिका के स्थायी सम्पादक महोदय छुट्टी पर जा रहे थे। जो कुछ शर्तें उन्होंने मेरे सामने रक्खी, वह सब मैंने ज्यों की त्यों मान ली और उनकी कुर्सी झट सम्हाल ली।

काम पर फिर से लग जाने का आनन्द, विरले ही जानते होंगे। सप्ताह भर मैं उसी आनन्द में डूबा रहा। जब-जब प्रेस की ओर मैं जाता, मेरे मन में यह बात बराबर जोर मारती रही कि लोगों का ध्यान मेरी ओर आकर्षित हो रहा है कि नहीं ? मेरा नाम और काम लोगों के सामने आ चुका था। मैं लोगों की निगाहों में चढ़ रहा था। एक दिन आफिस से निकलते ही मैंने देखा कि सीढ़ी पर खड़े हुए

कुछ नौजवान मेरे लिए रास्ता बनाते हुए तितर-बितर हो गये। मैंने सुना—उनमें से एक कह रहा था—'ये जो जा रहे हैं न, यही हैं!' स्वभावतः इस रिमार्क से मैं बहुत प्रसन्न हुआ। अगले दिन सीढ़ी के पास मैंने फिर वही जमावड़ा देखा। शहर में, सड़कों पर, इधर-उधर सभी लोग मुझे घूरते हुये नजर आये। कोई कहता—'अरे इसकी आँखें तो देखो जरा !' दूसरा कहता—'देखो कैसे चल रहा है।' जिस भाँति मैं इस पत्रिका के सम्पादक के रूप में सबका आकर्षण केन्द्र बन गया था, उसे जान कर भी मैं अनजान बना रहा। सोच रहा था कि मेरी चाची मुझे बहुत बुद्धू समझती थीं। उन्हें तो कम से कम अपनी इस लोकप्रियता के बारे में लिख ही दूँगा।

मैं सीढ़ी से ऊपर चढ़ रहा था। छोटी-छोटी पाँच-सात सीढ़ियाँ पार करके जब मैं कमरे की ओर बढ़ रहा था, तभी सहसा मैंने अपने कमरे से ठठाकर हँसने की आवाज सुनी। लपक कर मैंने दरवाजा खोला तो देखा, दो देहाती व्यक्ति कुर्सियों पर डटे हुए खिलखिला रहे थे। मुझे देखते ही उनकी खिलखिलाहट गायब हो गई और वे बहुत संजीदा हो गये। एक मिनट उन्होंने मेरी तरफ देखा और इसके पूर्व कि मैं कुछ पूछ सकूँ वे एकाएक खिड़की से कूदकर भग गये। मैं बिल्कुल चकित था।

कोई आध घंटा ही बीता होगा कि एक बुजुंग दढ़ियल सज्जन मेरे कमरे में घुसे। मेरे कहने पर वे बैठ गये। उनकी उलझन का रहस्य मैं न समझ सका। उन्होंने अपनी टोपी उतारी, एक जेब से रेशमी रूमाल और दूसरी से हमारे अखबार की एक प्रति निकाली। अखबार अपनी गोद में रखकर उन्होंने रूमाल से अपना चश्मा साफ करते हुए पूछा—

'आप ही नए संपादक हैं ?

'जी हाँ मैं ही हूँ।'

'आपने पहिले किसी कृषि पत्रिका का सम्पादन किया है?'

'जी नहीं। यह मेरा पहिला प्रयास है।'

'वह तो मालूम ही पड़ता है। वैसे आपको खेतीबारी के बारे में कुछ क्रियात्मक ज्ञान भी है।'

'जी ऽ ! जी नहीं। ऐसा कुछ खास तो नहीं है।

बुजुर्ग महोदय ने अपनी आँख पर चश्मा चढ़ाते हुए मेरी ओर गौर से देखा और अखबार को सुविधाजनक साइज में मोड़ते हुए बोले—

'यह तो मैं जान ही गया था। इसे पढ़िये तो जरा····इसी से मैं इस नतीजे पर पहुँच गया हूँ। यह आपका संपादकीय हैं न ! सुनिए यह आपका लिखा हुआ है न····? आप लिखते हैं—

'शकरकंद को कभी खींचना नहीं चाहिए। उससे वह खराब जाती है। अच्छा हो कि किसी लड़के को पेड़ पर चढ़ा दिया जाये। वह ऊपर से उस पेड़ को झकझोरे तब नीचे गिरी हुई शकरकंद को बीन लिया जाय।

'इसके बारे में आपका क्या विचार है। मेरा ख्याल है कि यह आपका ही लिखा हुआ है।'

'मेरा विचार ?' मैं बोला 'मेरा विचार तो एकदम साफ है, मैं समझता हूँ कि यही सबसे अच्छा तरीका है। सही बात करने की तरफ मेरा संकेत है वैसे····। बात यह है कि इस क्षेत्र में सैकड़ों मन शकरकंदी अधकचरी हालत में उखाड़ने से बरबाद हो जाती है। अगर एक लड़का पेड़ पर चढ़ा कर उसे झकझोरने का प्रबन्ध····'

'अपनी नानी को जाकर झकझोरिए सम्पादक जी।' वह बूढ़ा तेज होकर बोला, 'शकरकंद पेड़ पर नहीं उगती ! समझे ?'

'नहीं उगती ? अच्छा तो यह कौन कहता है कि वह पेड़ पर उगती है ! अरे साहब। वह तो अलंकारिक भाषा है अलंकारिक ! जिसे खेती-बारी के सम्बन्ध में जरा-सा भी ज्ञान होगा वह इस अलंकारिक भाषा

को जान जायेगा कि पेड़ का मतलब उस लता से है जिसे पकड़ कर वह लड़का झकझोरना शुरू करेगा जिस पर वह शकरकंद···मेरी बात सुनने की इच्छा दढ़ियल महोदय को नही थी। झल्ला कर उठ खड़े हुए। उन्होंने मेरे अखबार को बत्ती-बत्ती कर डाला और अपनी छड़ी से दोचार चीज इधर-उधर गिराते हुये गरजे—'आपकी भैंस की बुद्धि है।' इसके बाद वे उसी तर्ह में बाहर निकल गये। उनके नाटक से मैं यह तो समझ गया कि वे नाराज हैं, पर किस पर नाराज हैं यह बात मेरे पल्ले बिल्कुल ही नहीं पड़ी।

वे साहब बाहर निकले ही थे कि एक खूसट-सा लंबा आदमी, बाल बिखेरे, अपने चेहरे के गड़ढों में पसीना भरे, अर्ध-विक्षिप्त की तरह भीतर घुसा। उसने मौन रहने का इशारा किया। इधर-उधर से आहट ली। कान लगा कर सुनता रहा। फिर उसने दरवाजा बंद कर दिया और मुझसे कुछ फासले पर आकर खड़ा हो गया। मैंने देखा, कि उसने अपने सीने पर हमारे अखबार की एक प्रति लगा रक्खी थी। प्रति सामने रखते हुये बोला—

'यह आपने ही लिखा है? जरा जल्दी से पढ़िये। मुझे ढाढ़स दीजिये! मेरी तकलीफ दूर कीजिये....ओह...हाँ हाँ पढ़िये पढ़िये....'

उसकी हालत देख कर मैं पढ़ने लगा। ज्यों-ज्यों मेरे कंठ से शब्द निकल रहे थे त्यों-त्यों वह शांत होता जा रहा था। उसकी तनी हुई रगें मुलायम पड़ती जा रहीं थीं और चेहरे पर संतोष उभरता चला आ रहा था। जैसे किसी खंडहरों वाले कस्बे पर चाँदनी फैल जाये, ठीक उसी तरह उसके चेहरे पर शाँति छा गई। मैं पढ़ता जा रहा था—

पशु-पालन

पेडुंकी अच्छी जाति की चिड़िया है। उसके पालन-पोषण का अच्छा ध्यान रखना पड़ता है। उन्हें जून या इद सितम्बर तक घर में

रखना चाहिए। जाड़े में उसके रहने के लिए कहीं गर्म जगह ढूँढनी चाहिए। पेड़ुंकी से अच्छे कुटीर उद्योग भी चल सकते हैं।

इस वर्ष की अक्लमन्दी

इस वर्ष वर्षा अधिक नहीं हुई है। इसलिए रबी की फसल को बचाने के लिए अच्छा तरीका यही होगा कि अगस्त से ही उसकी बुवाई शुरू कर दीजिये। किसान को आगे की सोचना चाहिए। जरा सी बुद्धि आगे काम दे जायेगी।

नारियल की खेती

नारियल की खेती अपने यहाँ ठीक से नहीं हो रही है। नारियल अपने यहाँ का एक उत्तम खाद्यान्न माना जाता है। अपने यहाँ के अनेक व्यवसायों और उद्योग-धंधों में नारियल काम आता है। इसे गाय-बैल को खिलाकर दूध की अधिक मात्रा ली जा सकती है। नारियल संतरे की जाति का एक फल है। उसके लिए संतरे वाली खाद देनी चाहिए। नारियल को यदि बगीचे में लगाइये तो एक लाइन में लगाइए और एक-एक हाथ के अंतर पर लगाइए। इससे निराई में बड़ी सुविधा होगी। नए अनुसंधानों से पता चला है कि नारियल छाँह में ही नहीं धूप में भी उगाया जा सकता है। जाड़े के मौसम की पूरी तरह से तैयारी कर....

मेरा उत्तेजित श्रोता सहसा खड़ा हो गया। हाथ मिलाने के लिए हाथ बढ़ाते हुये वह बोला—

'बस-बस प्यारे! हो गया!! अब मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हूँ। मैंने भी जब यह पहिले पढ़ा था तो मुझे यकीन नहीं आता था! पर इसे देखकर तो मैं सचमुच पगला उठा। मेरे विचार आपके विचारों से एकदम मिलते हैं। इसे मैं इतनी जोर से चिल्ला कर कह बैठता था कि दो-चार मील तक लोग सुन सकते थे। पर मेरी बात लोग मानते

न थे। अब न मानें तो हत्या कर दूँ। सामने आ जायें तो अभी ही दिखा दूँ। मारना है तो अभी ही सही। मैंने पूरे लेख को कई बार पढ़ा और उनके घर में आग लगा दी। दो-चार जो बहस करते थे उनकी टाँग तोड़ दी है। एक को पेड़ पर टाँग आया हूँ ऐसा कि बिना मेरे वह उतर ही नहीं सकता। अब जाकर उसे भी खूब मारूँगा। खतम ही कर दूँगा। आपने तो मेरे दिमाग पर से बोझ हल्का कर दिया। अच्छा नमस्ते! ससुरे मेरी बात मानते ही नहीं थे। अब सब मान जायेंगे। अब आपने यह लेख लिख दिया न? अब सब मानेंगे...नमस्ते साहब!'

यह व्यक्ति जिस गुंडागर्दी को आत्म-सम्मान की भावनाओं से पूज रहा था उससे मुझे कुछ उलझन हो रही थी। मुझे लगता था कि इस सबसे मैं भी कहीं पर जरूर सम्बन्धित हूँ। पर मेरी विचार-धारा टूट गई। स्थायी सम्पादक महोदय कमरे में आ गये। [मैं सोच रहा था कि यह महाशय मिस्र तक घूमने चले जाते तो मैं इस बीच अपना सिक्का जमा लेता। पर ये हजरत जरूर वापस आयेंगे। इसका मुझे पूरा विश्वास था—सो वह आ गए।]

वे कुछ उदास थे। उनके माथे पर चिन्ता और निराशा की रेखाएँ स्पष्ट उभरी हुई थीं। कमरे में दोनों जंगली किसानों और उस बूढ़े ने जो उत्पात मचाया था उसे वे देख रहे थे। वे बोले—

'बहुत गड़बड़ मचा रक्खी है ये। बहुत बुरा हाल है.... खिड़की के छः शीशे ग़ायब हैं। कलमदान का पता नहीं। उगालदान उल्टा पड़ा है। पर दुर्गति का यहीं अंत नहीं है—उगालदान ही नहीं आपने तो अखबार की रिपुटेशन, उसकी प्रतिष्ठा भी इस घपले में उलट दी है। ...हूँ....हूँ....माना कि पेपर का इतना बड़ा संस्करण पहिले नहीं हुआ था पर कोई आदमी अपने पागलपन के सहारे लोकप्रिय होना चाहे तो उसको क्या कहिए। सुनो मिस्टर आज हजारों लोग सड़क के आसपास

मँडरा रहे हैं और चाहते हैं कि तुम्हारी एक झलक उन्हें मिल जाये। मैं ईमानदारी से कहता हूँ कि वे सब तुमको परले सिरे का मूर्ख और पागल समझते हैं। और अगर तुम्हारे सम्पादकीय लेखों को पढ़ कर कोई ऐसा सोचे तो इसमें बुरा भी क्या है? ये लेख पत्रकारिता के लिए कलंक हैं!

वे कहे जा रहे थे—

'क्यों...? आखिर आपको यह सूझी कैसे कि आप इस तरह के पत्र का सम्पादन कर सकते हैं? आपको तो खेतीबारी का क ख ग भी नहीं आता। आपको तो हल और फल तक का अन्तर नहीं मालूम है। गाय के पंख झड़ने वाले मौसम की चर्चा आप ही कर सकते हैं? सियार को आप ही पालतू पशु बना कर रख सकते हैं! घोंघा-मछली को संगीत सुना कर शांत करने की सलाह आप ही दे सकते हैं! वाहियात!! उन्हें संगीत या आवाज की क्या तमीज! मिस्टर! अगर तुमने अज्ञान में डिग्री पाने की पूरी कोशिश के साथ मेहनत की होती तब भी इतनी बढ़िया बुद्धि तुम्हारे पल्ले न पड़ती!! वाह! जामुन को आप अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के लिए सिफारिश करते हैं। यह आप का नहीं इस अखबार का ही 'दुर्भाग्य' है।

'आप अपनी जगह छोड़िये। यहाँ से फौरन चले जाइए। मैं अपनी ऐसी छुट्टी पर लानत भेजता हूँ। मैं तो छुट्टी मना ही नहीं सकता! आप मेरी जगह काम करें और मैं चैन से रह लूँ यह नामुमकिन है। मेरा दिल हर वक्त धड़कता रहेगा कि अगली बार आप किस चीज की सिफारिश कर बैठेंगे। जब अपने अखबार में 'अंडे की खेती' शीर्षक पढ़ता हूँ तो मेरे धीरज का बाँध टूटने लगता है। बस बहुत हुआ। आप फौरन निकल जाइये। आपने मुझे पहिले ही क्यों नहीं बता दिया कि आप खेतीबारी में एकदम जीरो हैं। आपको कुछ नहीं आता-जाता!!'

अब बहुत हो चुका था। मैं भी गरमाया—

'बता देता ? किसको ? अबे गोभी के बच्चे ! मैंने जिन्दगी में पहली बार किसी पत्रकार से ऐसे बेहूदे रिमार्क और कमेंट सुने हैं ! सुन ! मैं तो पिछले कई वर्षों से पत्रकारिता के क्षेत्र में काम करने का अनुभव कर चुका हूँ लेकिन यह पहली बार सुन रहा हूँ कि किसी पत्रिका के सम्पादन के लिए किसी पूर्व ज्ञान की जरूरत होती है।

'चुकंदरे आज़म ! आखिर अखबारों में सिनेमा और नाटकों की जो आलोचना लिखते हैं वह कौन लिखते हैं ? जूता गाँठना छोड़कर अब ये साले फिल्मी आलोचक हो गये ? उनका नाटक के बारे में उतना ही ज्ञान है जितना खेतीबारी के बारे में मेरा। इससे ज्यादा नहीं ! ये 'पुस्तक परिचय' कौन लिखते हैं ? वह जिन्होंने जिन्दगी भर एक किताब नहीं लिखी। देश की आर्थिक नीति पर सम्पादकीय कौन लिखते हैं बच्चू ? जो इसके बारे में न तो कुछ जानते हैं और न जानने की तकलीफ उठाते हैं। और मद्यनिषेध ? इसके बारे में वे देवता लिखते हैं जिन्हें कब्र में भी बिना एक घूँट के चैन नहीं मिल सकती। कृषि पत्रिका का सम्पादन कौन करते हैं ? तुम...तुम जैसे लोग जो कहानी लिखना चाहते थे रह गए; कविता ने दुत्कार दिया; उपन्यास लिखा पर वाहियात...तो अब कृषि पत्रिका के सम्पादक बन कर अपनी जेब गरमाते रहो। आप मुझे पत्रकारिता के बारे में बताना चाहते हैं ? बता चुके। देश के इस कोने से उस कोने तक चक्कर मार चुका हूँ। सुनो कद्दू राम। जो जितना कम जानता है, जो जितना ही ज्यादा हल्ला मचाता है उसे उतनी ही ऊँची कुर्सी मिलती है। अगर मैं सचमुच अज्ञानी होता तो आज कहीं से कहीं पहुँचा होता। भगवान इसका गवाह होता !! खैर मैं जाता हूँ। मेरे साथ जैसा व्यवहार आपने किया है, उसे देखते हुए अब मेरे लिए यही उचित है कि मैं यहाँ से फौरन चला जाऊँ। अब आप जाने और आपका काम ! मैंने अपनी ड्यूटी, अपना कान्ट्रैक्ट पूरा कर दिया। मैंने कहा था कि मैं आपका अखबार जन-साधारण में लोकप्रिय बना दूँगा

सो मैंने कर दिया। मैंने कहा था आपसे कि अखबार की बिक्री बीस हजार तक कर दूँगा—दो हफ्ते और मिल जाते तो वह भी कर के दिखा देता। आपके पाठक वर्ग में वही खेतिहर रह जाते जो लौकी-कुम्हड़े का फर्क मात्र जानते हैं !! आपका अखबार वे लोग पढ़ते जो बुद्धिजीवी हैं !! अखबार का सर्किल बढ़ जाता। नुकसान तुम्हारा ही है बेटा शकरकंद ! मुझे क्या ? मैं तो ये चला।'

और मैं उस दफ्तर से फ़ौरन चला आया।

(मार्क ट्वेन की एक कथा)
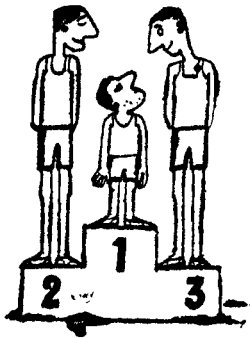
नए ढंग का भोजन

कुछ दिन हुये अखबारों में मैंने पढ़ा कि शिकागो युनिवर्सिटी के प्रोफ़ेसर प्लम ने एक ऐसे भोजन का आविष्कार किया है जिसमें खाद्य के सभी पौष्टिक तत्व अपने घनीभूत रूप में विद्यमान हैं। यह पौष्टिक तत्व गोलियों में बाँधकर रक्खे गये हैं। खाने की किसी भी चीज में जितनी भी शक्ति होती है उसकी सौ से दो सौ गुना शक्ति इन गोलियों मे होती है। इन गोलियों को पानी में घुलाकर जीवन के उन सभी उपयोगी तत्वों का उपयोग किया जा सकता है जो आवश्यक हैं। प्रोफ़ेसर महोदय इस भोजन व्यवस्था को क्रान्तिकारी रूप से सामाजिक जीवन में उतारना चाहते हैं।

बड़ा अच्छा है। इस सिस्टम में जो भी बातें हैं वह ठीक हैं। पर इस विषय में मुझे भी कुछ कहना है। प्रोफ़ेसर प्लम ने इसका जो उज्वल भविष्य अनुमाना है उसमें आये दिन इस तरह की घटना घट सकती है :

खाने की मेज़ पर हँसमुख परिवार इकट्ठा हो गया था। मेज़ पर हर बच्चे के सामने छोटे-छोटे कटोरों में खाने के सामान रक्खे गये थे। गुनगुने पानी से भरा हुआ जलपान भी माँ के सामने था। बच्चों में क्रिसमस त्योहार की आकुल उत्कण्ठा दिखाई पड़ रही है। सहसा अपनी कुर्सी से गृहस्वामी पिता उठे और उन्होंने पौष्टिक घनीभूत गोली निकाल कर मेज पर रख दी। बढ़िया हलुआ, चॉकलेट, मिठाइयाँ, केक सभी कुछ उस छोटी सी मेज़ पर उतर पड़े थे और इन्तज़ार कर रहे थे कि कब मौका मिले कि वे फूल पड़ें। गृहस्वामी पिता ने एक आँख से उस गोली को और दूसरी आँख से बड़ी श्रद्धा के साथ आसमान की तरफ़ देखते हुये जैसे प्रसाद निवेदन किया। उनकी आँखें बन्द थीं।

इसी वक्त गृहणी की एक तेज़ पुकार सभी के कानों में बींध गई, 'अरे देखिये, देखिये, बेबी ने गोली निगल ली !!' माँ का कहना बिलकुल सच था। गस्टावस एडाल्फस नामक उस छोटे से खूबसूरत बच्चे ने गोली उठाकर अपने मुँह में डाल ली थी।

तीन सौ पचास पौण्ड घनीभूत पौष्टिक तत्व उस नासमझ बच्चे के गले में अटक गया।

"पीठ पर ठोंको', चिन्ताग्रस्त माँ चिल्लाई, 'पानी दो इसे पानी।'

यह विचार अत्यन्त घातक था। घुलने के लिये जो पानी दिया, उससे गोली फूल गई। थोड़ी देर घुर-घुर-घुर की आवाज़ होती रही और उसके बाद एकाएक बड़े ज़ोर की धड़ाके की आवाज़ के साथ गस्टावस एडाल्फस टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया।

उन लोगों ने किसी तरह जब प्रयत्न करके उन टुकड़ों को इकट्ठा किया और उसे जोड़कर रक्खा तो उन्होंने देखा कि बच्चे के मुँह पर ठीक उसी तरह की एक मुस्कान थी जिस तरह कि एक साथ तेरह बढ़िया दावतें खाकर किसी व्यक्ति के मुख पर हो सकती है।

(स्टीफ़न लीकॉक की रचना का छायानुवाद)

भालू से मुठभेड़

पिछले कुछ दिनों से मेरी और भालू की मुठभेड़ के बारे जो अटकल-बाजियाँ चल रही हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए तथा जनता; भालू तथा अपने प्रति न्याय करने के लिए मैं अब यह आवश्यक समझता हूँ कि सम्पूर्ण तथ्यों को सामने रख दूँ। अब तक इसके पहिले मुझे भालू मारने का कोई अवसर नहीं मिला। इस कारण इस अवसर को उत्सव की भाँति मनाने के लिए मैं क्षमा चाहता हूँ।

सच पूछिए तो आक्रमण के लिए दोनों पार्टियों में से कोई भी तैयार न था। मैं भालू को कतई नहीं ढूंढ़ रहा था और भालू महोदय मुझे ही ढूँढ़ते हुए वहाँ आए हों; ऐसा विश्वास करने का भी कोई कारण नहीं दिखाई पड़ता। जैसा प्रायः होता है हम दोनों ही झरबेरी के फलों को ढूँढ़ते हुए अकस्मात् ही मिल गए थे। इधर के पहाड़ी इलाकों में घूमने वाले अक्सर भालुओं के बारे में बातचीत करते रहते हैं। उनकी बड़ी महत्वाकांक्षा रहती है कि जंगल के भालू देखें। वे

आपस में इस बात पर बड़ी बहस करते हैं कि यदि उन्हें भालू मिल जाय तो वह क्या करेंगे ? पर ये भालू बड़े शरारती होते हैं। जो उन्हें देखना चाहते हैं, उन्हें वे नहीं दिखाई पड़ते। ये तो सिर्फ़ कुछ अपने मन चाहे लोगों को ही दर्शन देते हैं।

अगस्त के महीने का एक गरम दिन था। किसी भी उत्साहपूर्ण साहसिक कार्य के लिए बहुत ही अनुपयुक्त दिन था। लेकिन हमारे मकान मालिक और कुछ मित्रों ने उसी वक्त उस इलाके में घूमने और भरबेरी खाने का प्रोग्राम बनाया। उन सबने मिलकर यह भी तै कर दिया कि मैं ही जाकर मैदान से उन लोगों के लिए भरबेरी तोड़ कर लाऊँ और वे आनन्द से खाँय। एक बाल्टी देकर मुझे रवाना कर दिया गया।

इस क्षेत्र में कुछ दूर झाड़ियाँ थीं—बीच का मैदान काफ़ी साफ़ था। खाली मैदानों में गायें चरा करती थीं। कुल मिला कर काफी रोमांटिक वातावरण था ! न तो किसी खतरे का आभास मुझे था और न आदत ही थी पर सबका साथ होने के नाते मेरे भी कंधे पर एक बन्दूक पड़ी थी। बात यह है कि कंधे पर बन्दूक रख लेने से व्यक्तित्व का आकर्षण कुछ अधिक हो जाता है। सोचा था कि बन्दूक से मुर्गाबी का शिकार करूँगा, पर मन में घबराहट बनी हुई थी। अगर मुर्गाबी बराबर एक जगह खड़ी न रह कर इधर-उधर खिसकती रही और अपने ऊपर निशाना लगवाने के लिए न राज़ी हुई तो मैं क्या करूँगा ? अधिकतर लोग मुर्गाबी मारने के लिए साधारण कारतूस का प्रयोग करते हैं पर मैं तो मुर्गाबी का शिकार रायफ़िल से ही करने में विश्वास रखता हूँ। उससे मौत का पूरा इत्मीनान रहता है और चिड़ियों का पेट छोटे-छोटे छर्रों का कोषागार नहीं बन जाता। रायफिल बढ़िया थी और उसमें कारतूस भी अच्छा लगा हुआ था। मेरे मित्र ने बड़ी तबीयत से उसे खरीदी थी। उससे वे बड़े जानवरों को मारने का इरादा रखते थे। अगर हवा तेज़ न हो, दूरी भी कुछ ज़्यादा

न हो, पेड़ में कुछ नमी भी हो तो वह उस रायफ़िल के सहारे बड़े-बड़े पेड़ मार गिराने का दावा रखते हैं। उस वक्त मैं शिकार में रुचि नहीं रखता था। कई वर्ष हुए एक छोटी सी लाल चिड़िया को मैंने बड़े ही अपमानजनक ढंग पर मारा था। उसकी मुझे बड़ी ग्लानि है। चिड़िया एक छोटे से चेरी के वृक्ष पर बैठी हुई थी। उसी पेड़ के नीचे आँख मूँद कर लेट कर, भरी हुई बन्दूक की नली ऊपर करके घोड़ा दबा दिया था। जब आँख खोला तो मैंने देखा कि उस छोटी सी चिड़िया के हज़ारों टुकड़े हो गए थे। किसी भी चिड़ी-विशेषज्ञ के लिए यह बताना बहुत कठिन हो जाता कि वह टुकड़ा चिड़िया के किस अंग का प्रतिनिधित्व करता है। उसी दिन से शिकार की ओर से मेरा मन हट गया था। इस घटना का वर्णन मैंने इसलिए किया है कि यद्यपि मैं उस दिन सशस्त्र होकर झरबेरी चुनने गया लेकिन वस्तुतः मुझमें और भालू की स्थिति में विशेष अंतर न था।

झरबेरी के इन जंगलों में अक्सर भालू दिखाई पड़ते हैं। अभी कुछ ही दिन हुए हमारे यहाँ की महराजिन किसी अपनी मित्र महिला के साथ वहाँ झरबेरी बीनने गई थीं। थोड़ी ही देर में भालू आता हुआ दीखा। मित्र महिला तो भाग खड़ी हुईं पर हमारी महराजिन डर के मारे वहीं बैठ गईं। साक्षात काल आता हुआ देखकर महराजिन चीख-चीख कर रोने लगीं। महराजिन के इस अनोखे व्यवहार से भालू भी चक्कर में पड़ गया। भालू उसके पास आया। सूँघा और चारों तरफ चक्कर लगा कर अंदाज लगाता रहा कि महराजिन उसके साथ चलने को राज़ी भी होगी या नहीं। अंततः मन ही मन निराश होकर वह फिर उसी जंगल में लौट गया। भालू की समझदारी, नाज़ुकख्याली और हमदर्दी का इससे अच्छा एवं अधिकारिक उदाहरण कहाँ मिलेगा। अफ्रीकी गुलाम वाले शेर की सहिष्णुता

इस भालू के सामने कहीं फीकी है क्योंकि इस भालू को काँटा-वाँटा नहीं लगा था।

पहाड़ी पर चढ़ने के बाद मैंने अपनी राइफिल एक पेड़ के सहारे टिका दी। काली-काली रसभरी झरबेरियों को ढूँढने लगा। दूर से उनकी काली चमक देखकर लालच बहुत लगती है पर पास पहुँचिए तो उतने की आधा भी नहीं मिलती। अपनी खोज में मैं धूप-छाँही रास्ते पर बहुत आगे बढ़ता चला गया। चरने के लिए आई हुई गायों के गले की घंटियाँ आसपास से सुनाई पड़ रही थीं। मक्खियों से बचने के लिए गायें झाड़ी में घुसी हुई थीं। मैं अक्सर जब पत्तियाँ हटाता था तो उसमें से से मुलुर-मुलुर ताकती हुई बेवकूफ़ गाय की आँखों को देखता था। धीरे-धीरे मेरे कान और मैं इस गऊ समाज के शोरगुल के अभ्यस्त हो गए। जंगल की सभी आवाज़ों को मैं गाय-भैंसों की आवाज़ों की देन समझ कर एकदम निश्चित सा हो गया। मैं भालू तो बिल्कुल भूल ही गया। सच पूछिए तो मैं अपने मन में एक समझदार भालू को हीरो बनाकर एक रूमानी कहानी बुन रहा था। मैं एक ऐसे भालू को सोच रहा था जिसका बच्चा खो गया था और वह एक छोटी-सी लड़की इस जंगल में पकड़ लाया, उसे अपनी माँद में ले गया और बहुत दिनों तक भालू का दूध और शहद खिला-पिलाकर उसने उसे जीवित रक्खा। लड़की जब भागने लायक हो गई तो वह एक दिन भाग कर अपने बाप के घर चली गई—(यद्यपि कहानी का यह भाग मैं बाद में बुनना चाहता था कि लड़की ने इतने दिनों बाद कैसे अपने घर को पहिचाना, कैसे अपने बाप को कहानी वगैरह बताई ! अस्तु !) बाप ने लड़की की कहानी सुनकर अपनी बंदूक उठाई, उस कृतघ्न लड़की के सहारे उस भालू को ढूँढ कर मार दिया। भालू ने मरते वक्त अत्यंत करुण दृष्टि से उस लड़की की ओर देखा····आदि आदि ! इस कथा से मैं जानवरों पर करुणा करने की शिक्षा निकालना चाहता था !

अभी मेरी कहानी बीचोबीच में ही थी कि झाड़ी के दूसरे सिरे पर मेरी निगाह जाकर ठहर गई !

सचमुच भालू खड़ा था !!

अपने पिछले पैरों पर खड़ा होकर वह ठीक वही काम कर रहा था जिसमें मैं लगा हुआ था। वह झरबेरी तोड़कर खा रहा था। एक पंजे से वह झाड़ी को नीचे करता था और दूसरे पंजे से झरबेरी तोड़ कर खाता था। मैं आश्चर्यचकित था, यदि कहूँ तो बहुत गलत न होगा ! एकाएक मुझे लगा कि सचमुच का भालू देखना मैं पसन्द नहीं करता था। उसी क्षण भालू की निगाह भी मुझ पर उतरी। झरबेरी खाना बन्द करके उसने बहुत प्रसन्न मुद्रा में मुझको देखा। उत्तर में उसी प्रसन्न मुद्रा से देखने की हिम्मत न आप में होगी और न मुझमें ही थी ! भालू अब अपने चारो पैरों पर खड़ा हो गया। वह मेरी ओर बढ़ने लगा। पेड़ पर चढ़ना कोई तुक नहीं रखता था। मुझसे बेहतर चढ़ने वाला मेरे सामने था। भाग सकता था, लेकिन भालू दौड़ने से कब छोड़ेगा ?

भालू निकट आ रहा था। सहसा मुझे भालू को भरमाने का एक उपाय सूझ गया। मैं अपने सैनिक अड्डे तक पहुँचने तक के लिए उसे बहका सकूँ इसका सरलतम तरीका यह था कि अपनी चुनी हुई झरबेरियों से भरी बाल्टी ही उसके सामने रख कर भागूँ ! भालू के चचा भी वैसी बढ़िया झरबेरी नहीं चुन सकते थे। झरबेरी की बाल्टी रख दूर, भालू पर चतुर पशुशिक्षक की भाँति आँख गड़ाए-गड़ाए, मैं पीछे हटने लगा। हिकमत काम कर गई।

झरबेरी के पास तक आकर भालू ठहर गया। बाल्टी में खाने का आदी न होने के कारण उसने उसे उलट दिया। सब झरबेरी धूल और पत्तियों में मिल गई। सुअरों की तरह से सूँघ-सूँघ कर वह खाने लगा। भालू बड़ी बेहूदगी से खाता है। उसके खाने के तौर-तरीके देखकर उसी बेहूदेपन का एहसास होने लगता है।

दुश्मन का सिर नीचा होते देख कर मैं भागा और अपनी सहचरी राइफिल के पास पहुँच गया। मेरी कुटनीतिक चाल देख कर भालू झरबेरी छोड़ कर मेरे ऊपर क्रोध करके धावित हुआ। झाड़ी-वाड़ी फाँद कर वह मेरी तरफ बढ़ा। मैं समझ गया कि हममें से एक का अन्त समय अब निकट आ गया है। ऐसे कठिन समय में विचार कितनी तेज़ी से दौड़ते हैं, इसे सब जानते हैं। मैं एक सचित्र पत्र में मरे हुए भालू के साथ अपनी फोटो देख रहा था! जिसकी कहानी की रोमांचकता पचास हज़ार प्रतियाँ बिकवा चुकी थी। भालू झाँक रहा था। अपनी बन्दूक सम्हालता हुआ मैं अपने पूरे जीवन का सिंहावलोकन कर रहा था! इस प्रकार के अनिवार्य सिंहावलोकन में मुझे घूम-घूम कर यही समझ में आ रहा था कि मैंने कोई पुण्य का कार्य नहीं किया। सारे पाप उभर कर सामने आ रहे थे! मुझे याद आ रहा कि एक अखबार का चन्दा मैं देते-देते रह ही गया था। अन्ततोगत्वा उसके सम्पादक और संचालक मर भी गए पर मैंने उस अखबार का चन्दा नहीं दिया! पैसा बाकी रह ही गया!

भालू और भी निकट आ रहा था!

भालू से मुटभेड़ की जो कहानियाँ मैंने पढ़ रक्खी थीं, वह सब मन-ही-मन दुहराने लगा। मुझे ऐसी कोई घटना नहीं याद आ रही थी जिसमें कोई आदमी जंगल में भाग कर भालू से बच गया हो—जब कि ऐसी कितनी ही घटनाएँ थीं जिसमें भालू आदमी से जंगल में भाग कर साफ अपनी जान बचा ले गया था। अब मैं यह सोच रहा था कि जब बन्दूक का डंडे की तरह प्रयोग न करना हो तो कैसे गोली मारनी चाहिए। मैंने सोचा मत्थे में गोली मारी जाय! पर यह था बहुत खतरनाक मामला। भालू का ज़रा सा तो दिमाग होता है, कहीं इधर-उधर गोली निकल गई तो....!फिर तै किया कि पीछे से भालू पर गोली मार कर उसके सीने तक गोली पहुँचा दूँगा। पर जब तक भालू निशाने के लिए खुद ही न खड़ा हो जाय, यह संभव कैसे

हो सकता था। अंततः मैंने उस पर आमतौर से गोली वर्षा करने के लिए तैं कर लिया।

भालू बढ़ता चला आ रहा था!

गोली चलाने वालों की अनेक मुद्राएँ है और घटनाएँ मेरे सामने आ गईं। पेट, पीठ के बल, लेट कर खड़े-बैठे, किसी भी तरह गोली मारने के लिए हिम्मत नहीं पड़ रही थी। निशाना लेने के लिए भालू मौका नहीं देना चाहता था। पहिले ही से बन्दूक चलाने की प्रैक्टिस मैंने क्यों नहीं की, इसका खेद उसी दिन हुआ था। इसके बारे में पढ़ा भी कम ही था!

पर भालू को मेरी पढ़ाई-लिखाई से क्या लेना-देना ? वह हज़रत बढ़े आ रहे थे।

अंत में मैं अपने परिवार पर अपना ध्यान केन्द्रित करने लगा। चूँकि मेरा परिवार छोटा-मोटा है इसलिए ध्यान लगाना बहुत कठिन नहीं लगा। अपनी श्रीमती को अप्रसन्न करने का भय और उनकी भावनाओं को ठेस पहुँचाने का दुख मेरे दिमाग़ पर छाया हुआ था। ज्यूँ-ज्यूँ घण्टे बीत रहे होंगे और मेरी पहुँच का कोई आसार नहीं दिखाई पड़ रहा, त्यूँ-त्यूँ क्या हाल हो रहा होगा ? झरबेरी के लिए सारा घर भर मेरा आसरा लगाए बैठा होगा! मेरी बीवी कितनी दुखी होगी, जब उसे यह पता चलेगा कि उसके पति को एक भालू ने खा लिया !! यही चिंता अकेली नहीं थी! उस समय मेरा दिमाग़ वाहियात विचारों का कोष था। मैं अपनी समाधि पर लगाए जाने वाले स्मारक-पत्थर को सोच रहा था—

यहाँ श्री…………

की

अस्थियाँ समाधिस्थ हैं

जिन्हें

२० अगस्त १८७७ को एक भालू ने खा लिया था!

छिः! बहुत रद्दी और अपमानजनक स्मारकचिह्न होगा यह!! 'भालू ने खा लिया' यह शब्दावली कितनी बेहूदा है। हमारी भाषा ही इतनी छिछली है कि इसमें यह बात अच्छे ढंग से कही ही नहीं जा सकती! किसी विदेशी भाषा में यही बात कहनी होती, तो कितनी सफाई से यह सारी बातें कही जा सकती थीं। आदमी की कायरता न दिखाकर भालू की बदतमीज़ी और नरभक्षी होने की भी तो चर्चा की जा सकती है! पर अपनी भाषा में वह शक्ति ही नहीं! हुँ-हुँ!

भालू मेरे ऊपर चढ़ आया था। मेरी आँखों में आँखें डालकर मुझे देख रहा था। मेरी सारी विचारधारा गड़बड़ा गयी। बंदूक उठाई और उसके सीने से लगा कर दाग दी। हिरन की तरह चौकड़ी भरता मैं फिर भागा। इस बार भालू के पीछा करने की आवाज़ नहीं सुनाई पड़ी। मैंने पीछे मुड़कर देखा। भालू रुक कर लेट गया था। सहसा मुझे याद आया कि बंदूक चलाने के बाद उसे फिर से भर लेना ही चतुर आदमी का काम है। सो मैंने भर लिया। भालू की ओर मैं भी टकटकी बाँधे देख रहा था। वह बिल्कुल ही हिलडुल नहीं रहा था! चुपचाप पड़ा था। मैं मुड़कर उसकी ओर चला। शायद यह भी ढोंग किए पड़ा हो; भालू तो अक्सर ढोंग करता है!! उसके पास जाकर एक गोली उसके मत्थे पर मैंने फिर जड़ दी! उसने उस गोली की रंचमात्र भी परवाह न की। मृत्यु के दरवाज़े पर अचानक ही वे महोदय पहुँच गये थे! वे अब वहीं अटके रहें, इसके लिए मैंने एक अदद गोली उनके माथे में और टोंक कर चैन की साँस ली और घर की ओर चला। मैंने एक भालू का शिकार कर डाला था!!

बिना किसी दिखावे और तमाशे के मैं अपने घर में बहुत ही नार्मल तरीके से घुसा। सवालों की बौछार हुई—

'झरबेरी कहाँ है?'

'अब तक आप थे कहाँ?'

'बाल्टी क्या हुई?'

'मैंने बाल्टी छोड़ दी !' मेरा उत्तर।

'छोड़ दी ? किसके लिए ?'

'भालू के लिए ! एक भालू उसे चाहता था !'

'क्या बकवास है जी !'

'आखिरी बार जब मैंने बाल्टी देखी तो वह एक भालू के ही पास थी !'

'तुमने भालू नहीं देखा न ?'

'हाँ मैंने सचमुच का भालू देखा !'

'भागा वह ?'

'हाँ, मेरे पीछे !'

'हम नहीं मानते ! तुमने क्या किया ?'

'कुछ नहीं। उसे मार डाला।'

'अरे वाह !' शोर मच गया ! 'हम मान नहीं सकते ! भला भालू कहाँ है ?'

'भालू देखना है तो जंगल में चलो। उसे उठाकर अकेले लाना तो मेरे बूते नहीं था !'

अपने घर वालों की आश्चर्य-शांति के बाद मैं और लोगों की सहायता पाने के लिए बाहर आया। भालू के शिकारी वर्ग ने मेरी कहानी को हँस कर सुना पर वह कहानी उन्हीं से फैलने लगी ! धीरे-धीरे चालीस-पचास आदमी मेरे साथ लग गए कि वह जंगल से भालू उठा कर ले आएँ ! सब जानते थे कि अब वहाँ भालू-वालू नहीं मिलेगा लेकिन जिसे देखिए वही बदूंक लेकर चल रहा था ! लाठी, डंडे, बरछे, बल्लम, बंदूक लेकर पूरा हंगामा जंगल पर हमला करने गया।

जैसे ही उन लोगों को दुर्घटनास्थल पर लेकर पहुँचा और बेचारा भालू अपनी खाल के कफ़न में लिपटा हुआ दिखाई पड़ा—सारी भीड़ का जोश हुर्र हो गया ! यह सचमुच का भालू था और उस मुठ-

भेड़ का हीरो उनके सामने खड़ा था ! उस भालू की अर्थी यात्रा का दृश्य बहुत विचित्र था। उसका अंतिम दर्शन करने के लिए कितने लोग सड़क के किनारे खड़े थे।

हाँ एक बात मैं कहूँगा कि मेरे शिकारी दोस्त ने मेरे साथ अन्याय नहीं किया ! यानी वह भालू था तो उसे भालू ही माना। यह बात दूसरी है कि उसे छोटा भालू ही बताया गया। मिस्टर डीन बहुत बड़े शिकारी हैं। उनका भी कहना है कि उन्होंने ऐसा निशाना नहीं देखा ! हाँ एक बात वह बेकार बार बार दुहरा रहे थे कि ऐसा घाव गाय के सींग का भी होता है ! भला इससे क्या मतलब हो सकता है ! गोली और गाय के सींग का क्या मुकाबिला !

मुझ पर इस रिमार्क का कुछ खास प्रभाव भी नहीं पड़ा। सोते समय तक मुझे बराबर यह विचार आनंद प्रमत्त करता रहा कि मैंने आखिरकार एक भालू मार ही डाला !!

(चार्ल्स डडले वार्नर की कथा)

कुछ रत्न कण

● जो व्यक्ति सदा अपने को बराबर कोसता रहता हो, उसे चुप कराने का सब से सरलतम उपाय यह है कि आप उससे सहमत हो जाइए। आप देखेंगे कि वह एकाएक चुप हो गया है क्योंकि वह यह कभी नहीं चाहता कि दूसरे भी उसे वही समझें अपने लिए जो वह कह रहा था !!

● किसी पुस्तक को (चाहे वह बाइबिल ही क्यों न हो !) दो कौड़ी की कहने के लिए किसी भी मूर्ख को खोजा जा सकता है। दिक्कत तो तब उठती है जब उसे अच्छी कहलाना हो और दूसरों से भी मनवाना हो !

● मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने कभी कोई ऐसा काम किया होगा जिसके लिए मैं तो लज्जित रहूँ लेकिन दूसरे उसे हमेशा याद रक्खें और समय-कुसमय मेरी स्मृति में किसी बहाने उसकी चर्चा उठाते ही रहा करें !

● सृष्टि में नारी शीशे के बर्तन की तरह है। अतिशय सुंदर और ज़रा-सी लचक में चटाक से टूटने वाली! किन्तु फिर भी वह एक पात्र है जो लोगों के लिए 'जामे-सेहत' बन जाती है! बिना हौव्वा के आदम उसी तरह मूर्ख लगता जैसे कि अकेले बैठ कर शतरंज खेलने वाले जीव! उसकी सुदंरता के विषय में जो कुछ कहा गया है, वह सब थोड़ा है! पर न तो वह फ़रिश्ता है और न उसे फ़रिश्ता होना ही चाहिए—क्योंकि आजकल की दुनियाँ में फरिश्तों से कुछ काम नहीं निकलता!! आज तक नारी ने सिर्फ़ एक ही भूल की है—महानतम भूल! वह यह कि और अक्सर अपने आप को आदम से अच्छा मर्द समझती है!

● बैल को सींग की तरफ़ से मत पकड़ो। जब भी पकड़ो तब उसकी पूँछ पकड़ो। पूँछ पकड़ कर बैल को थामने में सदा यह सुविधा रहेगी कि जब चाहो तब उसे छोड़ सकते हो!

● मैं ग़रीब आदमी हूँ। पर मुझे यह संतोष है कि ग़रीबघर में पैदा हुआ, इसलिए ग़रीब हूँ! अपनी हरकतों से ग़रीब नहीं हुआ हूँ।

(जॉशबिलिंग्स के संग्रह से)